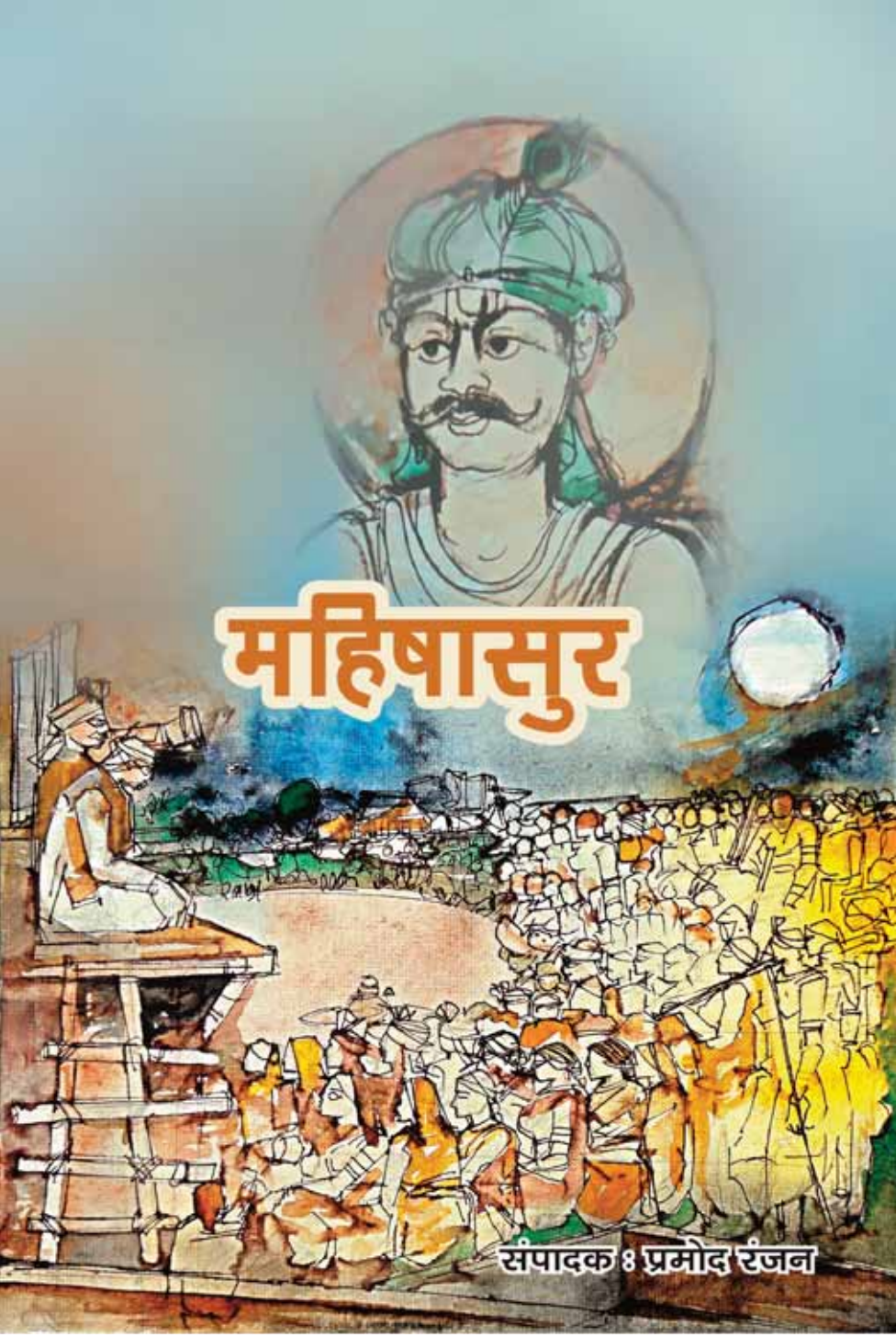

संपादक : प्रमोद रंजन

महिषासुर

- विनोद कुमार

रात के पिछले पहर नींद टूट गई और फिर तमाम कोशिशों के बाद आई नहीं. .
जेहन में चलता रहा यह छाया चित्र
फिर आयेगी महिषासुरमर्दिनी
नौ दिनों तक अनुष्ठान पूर्वक होगा अभिषेक
देवता तरह-तरह के हथियार उन्हें थमाएंगे
फिर होगा महिषासुर का वध
महिषासुर की छाती से टपकेगा लाल-लाल रक्त
हो सकता है असुर कन्यायें रोई होंगी
क्योंकि वह रहा होगा किसी का भाई, किसी का पिता और किसी का पति,
लेकिन देव कन्यायें उस हत्या के दिन एक दूसरे को अबीर लगायेंगी
और देवता बरसायेंगे आकाश से फूल
और हम भी महिषासुर के वध के तमाशे में शामिल होंगे
हमें बताया जायेगा कि यह दो जातियों का संघर्ष नहीं,
हूल और उलगुलान के शहीदों का लहु नहीं,
न कलिंगनगर, नंदीग्राम, तपकारा और गुआ की छाती से बहता लहु,
यह तो अंधकार और प्रकाश का युद्ध है
सदविचार और मनोविकार का युद्ध है...

लेकिन मुझे समझ नहीं आता कि सद्विचार श्वेत और मनोविकार हमेशा श्याम क्यों होता
रात भी तो उतना ही महत्वपूर्ण है जितना जगमगाता दिन
बल्कि मेरी तो आखें चौंधिया जाती हैं रोशनी से
अधंकार देता है विश्रांति, दिन की सारी थकान हर लेता है
और महिषासुर के साथ जिस काड़े का वध होता है
कहीं वह वही तो नहीं जो भूमि को जोत कर
उर्वर बनाने में हमारे काम आता है?

महिषासुर

संपादक
प्रमोद रंजन

दुसाध प्रकाशन, लखनऊ

महिषासुर

संस्करण : 2014

प्रकाशक : दुसाध प्रकाशन
डाइवर्सिटी हाउस, वार्ड : शंकरपुरवा
आदिल नगर, कल्याणपुर, लखनऊ - 226022

© संपादक

मूल्य : ₹ **50.00**

लेख संग्रह	:	महिषासुर
संपादक	:	प्रमोद रंजन
आवरण	:	डा. लाल रत्नाकर
मुद्रक	:	क्विक ऑफसेट, शाहदरा, दिल्ली-110032

MAHISHASURA (Hindi)
Ed. by **Pramod Ranjan**
ISBN : 978-81-87618-54-6

विषय सूची

संपादकीय		4
एक सांस्कृतिक युद्ध	- प्रमोद रंजन	7
किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन?	- प्रेमकुमार मणि	9
हत्याओं का जश्न क्यों?	- प्रेमकुमार मणि	13
असुर होने पर मुझे गर्व है	- शिबू सोरेन	15
महाप्रतापी महिषासुर की वंशज	- अश्विनी कुमार पंकज	16
महिषासुर की याद	- जितेंद्र यादव	19
महिषासुर यादव वंश के राजा थे	- चंद्रभूषण सिंह यादव	21
दुर्गासप्तशती का असुर पाठ	- अश्विनी कुमार पंकज	26
मुक्ति के महाख्यान की वापसी	- समर अनार्य	30
धर्मग्रंथों के पुनर्पाठ की परंपरा	- दिलीप मंडल	34
महिषासुर और दुर्गा की उपकथाएं	- संजीव चंदन	38
इतिहास को यहां से देखिए	- अभिषेक यादव	40
महिषासुर दिवस की जन्म कथा	- अरविंद कुमार	42
महिषासुर : पुनर्पाठ की जरुरत	- राजकुमार राकेश	45
मिथक का सच	- सुरेश पंडित	48
सौ जगहों पर शहादत दिवस	- अरूण कुमार	52
आर्य व्याख्या का आदिवासी प्रतिकार	- विनोद कुमार	55
जिज्ञासाएं और समाधान		59
मीडिया में महिषासुर		61

संपादकीय

भिन्न जीवन-मूल्य की अभिव्यक्ति

पिछले तीन वर्षों में महिषासुर के नाम से शुरू हुए आंदोलन का तेजी से विस्तार हुआ है। उत्तर भारत के विभिन्न उच्च अध्ययन संस्थानों व अन्य अनेक शहरों, कस्बों में छोटे-छोटे समूह 'महिषासुर शहादत दिवस' का आयोजन कर रहे हैं। इसे आसानी से महसूस किया जा सकता है कि यह भारत के बहुजनों, जो सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से दमित रहे हैं, के एक त्योहार के रूप में स्थापित हो रहा है।

इस आयोजन की लोकप्रियता के साथ ही कुछ सवाल आपत्तियों की शक्ल में उठे हैं, जिनका निराकरण यहां आवश्यक है।

दरअसल, कुछ लोग स्वयं को नास्तिक और सिर्फ इस कारण खुद को स्वाभाविक रूप से प्रगतिशील भी मान बैठते हैं। ऐसे लोग दावा करते हैं कि *'जो लोग महिषासुर की छलपूर्वक हत्या को स्वीकार करेंगे तो उन्हें धर्मग्रंथों में दुर्गा के महिमामंडन को भी स्वीकार करना होगा'।* कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारी नजर में यह एक भ्रामक तर्क है, जिसके मूल में सच्ची नास्तिकता नहीं, बल्कि यथास्थितिवाद है। अन्यथा किसी सच्चे, युक्तिपूर्ण नास्तिक मस्तिष्क को यह समझने में क्या कठिनाई हो सकती है कि हर मिथकीय कथा भी स्वयं में एक 'पाठ' भर है, जिसमें तत्कालीन सामाजिक यथार्थ और ऐतिहासिकता अनिवार्य रूप से निवेशित रहती है। यह निवेश जितना दुर्गा की पौराणिक कथा में है, उतना ही आधुनिक काल की भी किसी साहित्यिक कथा में होता है। उदाहरण के लिए, हिंदी के सर्वाधिक ख्यात कथाकार प्रेमचंद या किसी भी लेखक के कथापात्रों के बारे में विचार करें। प्रेमचंद का 'होरी', 'घीसू-माधव' हो या फिर मैथिलीशरण गुप्त की 'उर्मिला' और 'यशोधरा' आदि। क्या हम ऐसे पात्रों के आधार पर तत्कालीन समाज और सामाजिक इतिहास का अध्ययन नहीं करते? अगर 'इतिहास' का कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं हो तब भी क्या हम सिर्फ इन पात्रों के आधार पर तत्कालीन अन्याय और शोषण को नहीं समझ सकते? क्या हम पात्रों के निर्माण के आधार पर लेखक की पक्षधरता अथवा पाखंड की आलोचना नहीं करते रहे हैं? क्या कोई सम्यक मस्तिष्क का व्यक्ति यह कह सकता है कि कथा-पात्र सिर्फ लेखक की कल्पना की उपज होते हैं?

बिना यथार्थ के कथा का विन्यास खड़ा ही नहीं हो सकता। हां, यथार्थ की मात्रा भिन्न हो सकती है। इसलिए इस पर जरूर विमर्श किया जा सकता है कि दुर्गा-महिषासुर की कथा में कहां-कितना यथार्थ है और कितनी कल्पना तथा कितनी अतिश्योक्ति। जहां अतिश्योक्ति अथवा महिमामंडन है, उसे चिन्हित किया जा सकता है। लेकिन इससे कतई इंकार नहीं

किया जा सकता कि इस कथा में तत्कालीन समाज की उपस्थिति नहीं है। जितनी बड़ी मूर्खता यह कहना है कि ये मिथकीय पात्र सच हैं, उससे कहीं बड़ी मूर्खता बिना किसी साक्ष्य के यह प्रमाणित करने में जुट जाना है कि ये 'झूठ' ही हैं। न तो इतिहास अंतिम रूप से उत्खनित हो चुका है, न ही सत्य को अंतिम रूप से पा लिया गया है।

बहरहाल, इस पौरणिक कथा से इतर भी कई नृतत्वशास्त्रियों, इतिहासकारों ने अनेकानेक साक्ष्यों के माध्यम से आर्यों और असुर जातियों के संघर्ष की ऐतिहासिकता को पुष्ट किया है। वास्त्व में, वे नास्तिकता के खोल में बैठकर चाहते हैं कि जो जैसा चल रहा है, चलता रहे। उन्हें दुर्गा के महिमामंडन से वर्षों से कोई आपत्ति नहीं रही है। न ही उन्हें हत्याओं के इन जश्नों से परहेज है। उन्हें आपत्ति सिर्फ उसकी बहुजन व्याख्या से है। लेकिन उन्हें याद रखना चाहिए कि इतिहास के कथित अंतिम सत्य की प्राप्ति तक अन्याय से पीड़ित लोग अपने संघर्ष को स्थगित नहीं रख सकते।

पौराणिक कथा का पुनर्पाठ क्यों?

किसी भी कथा के, चाहे वह पौराणिक हो, साहित्यिक हो, या फिर अय्यारी के ही किस्से क्यों न हों, निहितार्थ को समझने के लिए उसके 'पाठ' का विखंडन आवश्यक है। आप किसी भी ब्राह्मण पौराणिक कथा को विखंडित करते हुए पढें तो पाएंगे कि वहां नायकों, नायिकाओं द्वारा किये गये अन्यायों, छलों को बेहद स्पष्टता से स्वीकार किया गया है तथा इन्हें ही उनका शौर्य बताकर अतिश्योक्तिपूर्ण ढंग से महिमामंडित किया गया है। इससे यह तो स्पष्ट होता ही है कि ब्राह्मणों की नैतिकता मुख्य रूप से सिर्फ शक्ति पर आधारित रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'न्याय' जैसी अवधारणा से उनका दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं था! मध्यकाल में ब्राह्मण-संस्कृति की पुनर्स्थापना का प्रयत्न करते हुए तुलसीदास ने भी इसे स्वीकार किया ही कि 'समरथ को नहीं दोष गोसाईं' !

यहीं उन लोगों के इस प्रश्न का उत्तर भी मिलता है कि *'दुर्गा-महिषासुर की पौराणिक कथा का आज पुनर्पाठ क्यों? भारतीय समाज को इसका लाभ है? बहुजन समाज को इससे क्या फायदा है?'* यह पुनर्पाठ न्याय की अवधारणा और मनुष्योचित नैतिकता को स्थापित करने के लिए है। सामर्थ्य पर सच्चाई की विजय के लिए है। सैकड़ों वर्षों से जाति-व्यवस्था से त्रस्त भारतीय समाज का अवचेतन इन्हीं कथाओं से बना है। भीषण असमानता से ग्रस्त इस समाज को अपनी मुक्ति के लिए अपने इस अवचेतन में उतरना ही होगा। महज विज्ञान आधारित आधुनिकता के बाहरी औजारों की शल्य क्रिया से इसका मानसिक-मवाद पूरी तरह खत्म न किया जा सकेगा। पौरणिक कथाओं के पुनर्पाठ को इसके मनौवैज्ञानिक इलाज की कोशिश के रूप में भी देखा जाना चाहिए।

जिस तरह के युद्धों और छलों का विवरण पौराणिक कथाओं में मिलता है, उससे प्रतीत होता है कि महिषासुर अपने समय के शूर-वीर तथा उस सामाजिक तबके के सामाजिक-

राजनीतिक नेतृत्वकर्ता थे, जिनके जीवन-मूल्य सुरों (ब्राह्मणों/आर्यों) के जीवन-मूल्यों से भिन्न थे। उस सामाजिक तबके के पास सुरों से अधिक शक्ति, साधन व धन भी था। वे अपने क्षेत्र के शासक थे। उन्हें हरा पाना सुरों के लिए संभव नहीं हो पा रहा था। अंततः सुरों ने उन्हें पराजित करने के लिए एक महिला का छलपूर्वक उपयोग किया और वे सफल रहे। आज के बहुजन तबकों के युवा इस कथा में से यह तथ्य झांकते हुए पाते हैं कि उनके पूर्वज ही इस भौगालिक क्षेत्र की संपदा के स्वामी थे। एक अल्पकसंख्यक समूह ने उनके पूर्वजों को छलपूर्वक परास्त किया और उन्हें राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और अंततः सांस्कृतिक गुलामी की ओर धकेल दिया। यह पौराणिक तथ्य बहुजन तबकों के युवाओं को न सिर्फ सांस्कृतिक बल्कि अपनी आर्थिक और सामाजिक गुलामी को भी चुनौती देने के लिए प्रेरित करता है और इसके लिए राजनैतिक रणनीतियां बनाने की भूमिका तैयार करता है। इस प्रकार, यह पुनर्पाठ आधुनिक, न्याय की अवधारणा से युक्त, मनुष्योचित नैतिकता से परिपूर्ण जीवन-मूल्यों की स्थापना करता है।

जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी दिल्ली के ऑल इंडिया बैकवर्ड फोरम द्वारा इस विषय पर गत वर्ष शरद पूर्णिमा (महिषासुर शहादत दिवस) पर पुस्तिका 'किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन' शीर्षक से जारी की गयी थी। यह प्रकारांतर सेउसी का दूसरा संस्करण है, जिसमें कुछ और नये लेख भी शामिल कर लिये गये हैं। इस दूसरे संस्करण को प्रकाशित करने के लिए मैं डायवर्सिटी मिशन के संस्थापक श्री एचएल दुसाध जी का आभार व्यक्त करता हूं।

-प्रमोद रंजन

अक्टूबर, 2014

'किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन' (2013) का संपादकीय

एक सांस्कृतिक युद्ध

महिषासुर के नाम से शुरू हुआ यह आंदोलन क्या है? इसकी आवश्यकता क्या है? इसके निहितार्थ क्या हैं? यह कुछ सवाल हैं, जो बाहर से हमारी तरफ उछाले जाएंगे। लेकिन इसी कड़ी में एक बेहद महत्वपूर्ण सवाल होगा, जो हमें खुद से पूछना होगा कि हम इस आंदोलन को किस दृष्टिकोण से देखें? यानी, सबसे महत्वपूर्ण यह है कि हम एक मिथकीय नायक पर कहां खड़े होकर नजर डाल रहे हैं। एक महान सांस्कृतिक युद्ध में छलांग लगाने से पूर्व हमें अपने लांचिंग पैड की जांच ठीक तरह से कर लेनी चाहिए। हमारे पास जोतिबा फूले, डॉ. आम्बेडकर और रामास्वामी पेरियार की तेजस्वी परंपरा है, जिसने आधुनिक काल में मिथकों के वैज्ञानिक अध्ययन की जमीन तैयार की है। महिषासुर को अपना नायक घोषित करने वाले इस आंदोलन को भी खुद को इसी परंपरा से जोड़ना होगा। जाहिर है, किसी भी प्रकार के धार्मिक कर्मकांड से तो इसे दूर रखना ही होगा, साथ ही मार्क्सवादी प्रविधियां भी इस आंदोलन में काम न आएंगी। न सिर्फ सिद्धांत के स्तर पर बल्कि ठोस, जमीनी स्तर पर भी इस आंदोलन को कर्मकांडियों और मार्क्सवादियों के लिए, समान रूप से, अपने दरवाजे कड़ाई से बंद करने होंगे। आंदोलन जैसे-जैसे गति पकड़ता जाएगा, ये दोनों ही चोर दरवाजों से इसमें प्रवेश के लिए उत्सुक होंगे।

सांस्कृतिक गुलामी क्रमशः सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक गुलामी को मजबूत करती है। उत्तर भारत में राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक गुलामी के विरुद्ध तो संघर्ष हुआ लेकिन सांस्कृतिक गुलामी अभी भी लगभग अछूती रही है। जो संघर्ष हुए भी, वे प्रायः धर्म सुधार के लिए हुए अथवा उनका दायरा हिंदू धर्म के इर्द-गिर्द ही रहा। हिंदू धर्म की नाभि पर प्रहार करने वाला आंदोलन कोई न हुआ। महिषासुर आंदोलन की महत्ता इसी में है कि यह हिदू धर्म की जीवन-शक्ति पर चोट करने की क्षमता रखता है। इस आंदोलन के मुख्य रूप से दो दावेदार हैं, एक तो हिंदू धर्म के भीतर का सबसे बड़ा तबका, जिसे हम आज 'ओबीसी' के नाम से जानते हैं, दूसरा दावेदार हिंदू धर्म से बाहर है - आदिवासी। अगर यह आंदोलन इसी गति से आगे बढता रहा तो हिंदू धर्म को भीतर और बाहर, दोनों ओर से करारी चोट देगा। इस आंदोलन का एक फलितार्थ यह भी निकलेगा कि हिंदू धर्म द्वारा दमित अन्य सामाजिक समूह भी धर्मग्रंथों के पाठों का विखंडन आरंभ करेंगे और अपने पाठ निर्मित करेंगे। इन नये पाठों की आवाजें जितनी मुखर होंगी, बहुजनों की सांस्कृतिक गुलामी की जंजीरें उतनी ही तेजी से टूटेंगी।

बहरहाल, यह पुस्तिका ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंटस फोरम, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के साथी जितेंद्र यादव और डॉ. अरुण कुमार तथा बहुजन आंदोलन के

ध्वज-वाहक अग्रज श्री सुनील सरदार के आग्रह पर मुझे बहुत कम समय में तैयार करनी पड़ी रही है। इसके बावजूद यह संतोष है कि सभी महत्वपूर्ण लेख व सामग्री इस पुस्तिका में आ गयी है, जिनके माध्यम से आप इस आंदोलन की पृष्ठभूमि और त्वरा को समझ पाएंगे। एआईबीएसएफ की ओर से मैं इस आंदोलन में सहयोग के लिए श्री प्रेमकुमार मणि, आयवन कोस्का, अश्विनी कुमार पंकज, दिलीप मंडल व चंद्रभूषण सिंह यादव का विशेष रूप आभार व्यक्त करता हूं।

-प्रमोद रंजन

अक्टूबर 2013

किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन?

प्रेमकुमार मणि

शक्ति के विविध रूपों, यथा योग्यता, बल, पराक्रम, सामर्थ्य व ऊर्जा की पूजा सभ्यता के आदिकालों से होती रही है। न केवल भारत में बल्कि दुनिया के तमाम इलाकों में। दुनिया की पूरी मिथालाजी के प्रतीक देवी-देवताओं के तानों-बानों से ही बुनी गयी है। आज भी शक्ति का महत्व निर्विवाद है। अमेरिका की दादागीरी पूरी दुनिया में चल रही है, तो इसलिए कि उसके पास सबसे अधिक सामरिक शक्ति और संपदा है। जिनके पास एटम बम नहीं हैं, उनकी बात कोई नहीं सुनता, उनकी आवाज का कोई मूल्य नहीं है। गीता उसकी सुनी जाती है, जिसके हाथ में सुदर्शन हो। उसी की धौंस का मतलब है और उसी की विनम्रता का भी। कवि दिनकर ने लिखा है- 'क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो, उसको क्या जो दंतहीन, विषहीन, विनीत, सरल हो।'

दंतहीन और विषहीन सांप सभ्यता का स्वांग भी नहीं कर सकता। उसकी विनम्रता, उसका क्षमाभाव अर्थहीन हैं। बुद्ध ने कहा है-'जो कमजोर है, वह ठीक रास्ते पर नहीं चल सकता। उनकी अहिसंक सभ्यता में भी फुफकारने की छूट मिली हुई थी। जातक में एक कथा में एक उत्पाती सांप के बुद्धानुयायी हो जाने की चर्चा है। बुद्ध का अनुयायी हो जाने पर उसने लोगों को काटना-डंसना छोड़ दिया। लोगों को जब यह पता चल गया कि इसने काटना-डंसना छोड़ दिया है, तो उसे ईंट-पत्थरों से मारने लगे। इस पर भी उसने कुछ नहीं किया। ऐसे लहू-लुहान घायल अनुयायी से बुद्ध जब फिर मिले तो द्रवित हो गये और कहा 'मैंने काटने के लिए मना किया था मित्र, फुफकारने के लिए नहीं। तुम्हारी फुफकार से ही लोग भाग जाते।'

भारत में भी शक्ति की आराधना का पुराना इतिहास रहा है। लेकिन यह इतिहास बहुत सरल नहीं है। अनेक जटिलताएं और उलझाव हैं। सिंधु-घाटी की सभ्यता के समय शक्ति का जो प्रतीक था, वही आर्यों के आने के बाद नहीं रहा। पूर्ववैदिक काल, प्राक्वैदिक काल और उत्तरवैदिक काल में शक्ति के केंद्र अथवा प्रतीक बदलते रहे। आर्य सभ्यता का जैसे-जैसे प्रभाव बढ़ा, उसके विविध रुप हमारे सामने आये। इसीलिए आज का हिंदू यदि शक्ति के प्रतीक रूप में दुर्गा या किसी देवी को आदि और अंतिम मानकर चलता है, तब वह बचपना करता है। सिंधु घाटी की जो अनार्य अथवा द्रविड़ सभ्यता थी, उसमें प्रकृति और पुरुष शक्ति के समन्वित प्रतीक माने जाते थे। शांति का जमाना था। मार्क्सवादियों की भाषा में आदिम साम्यवादी समाज के ठीक बाद का समय। सभ्यता का इतना विकास तो हो ही गया था कि पकी ईंटों के घरों में लोग रहने लगे थे और स्नानागार से लेकर बाजार तक बन

गये थे। तांबई रंग और अपेक्षाकृत छोटी नासिका वाले इन द्रविड़ों का नेता ही शिव रहा होगा। अल्हड़ अलमस्त किस्म का नायक। इन द्रविड़ों की सभ्यता में शक्ति की पूजा का कोई माहौल नहीं था। यों भी उन्नत सभ्यताओं में शक्ति पूजा की चीज नहीं होती।

शक्ति पूजा का माहौल बना आर्यों के आगमन के बाद। सिंधु सभ्यता के शांत-सभ्य गौ-पालक (ध्यान दीजिए शिव की सवारी बैल और बैल की जननी गाय) द्रविड़ों को अपेक्षाकृत बर्बर अश्वारोही आर्यों ने तहस-नहस कर दिया और पीछे धकेल दिया। द्रविड़ आसानी से पीछे नहीं आये होंगे। भारतीय मिथकों मे जो देवासुर संग्राम है, वह इन द्रविड़ और आर्यों का ही संग्राम है। आर्यों का नेता इंद्र था। शक्ति का प्रतीक भी इंद्र ही था। वैदिक ऋषियों ने इस देवता, इंद्र की भरपूर स्तुति की है। तब आर्यों का सबसे बड़ा देवता, सबसे बड़ा नायक इंद्र था। वह वैदिक आर्यों का हरक्युलस था। तब किसी देवी की पूजा का कोई वर्णन नहीं मिलता। आर्यों का समाज पुरुष प्रधान था। पुरुषों का वर्चस्व था। द्रविड़ जमाने में प्रकृति को जो स्थान मिला था, वह लगभग समाप्त हो गया था। आर्य मातृभूमि का नहीं, पितृभूमि का नमन करने वाले थे। आर्य प्रभुत्व वाले समाज में पुरुषों का महत्व लंबे अरसे तक बना रहा। द्रविड़ों की ओर से इंद्र को लगातार चुनौती मिलती रही।

गौ-पालक कृष्ण का इतिहास से यदि कुछ संबंध बनता है, तो लोकोक्तियों के आधार पर उसके सांवलेपन से द्रविड़ नायक ही की तस्वीर बनती है। इस कृष्ण ने भी इंद्र की पूजा का सार्वजनिक विरोध किया। उसकी जगह अपनी सत्ता स्थापित की। शिव को भी आर्य समाज ने प्रमुख तीन देवताओं में शामिल कर लिया। इंद्र की तो छुट्टी हो ही गयी। भारतीय जनसंघ की कट्टरता से भारतीय जनता पार्टी की सीमित उदारता की ओर और अंततः एनडीए का एक ढांचा, आर्यों का समाज कुछ ऐसे ही बदला। फैलाव के लिए उदारता का वह स्वांग जरुरी होता है। पहले जार्ज और फिर शरद यादव की तरह शिव को संयोजक बनाना जरूरी था, क्योंकि इसके बिना निष्कंटक राज नहीं बनाया जा सकता था। आर्यों ने अपनी पुत्री पार्वती से शिव का विवाह कर सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश की। जब दोनों पक्ष मजबूत हों तो सामंजस्य और समन्वय होता है। जब एक पक्ष कमजोर हो जाता है, तो दूसरा पक्ष संहार करता है। आर्य और द्रविड़ दोनों मजबूत स्थिति में थे। दोनों में सामंजस्य ही संभव था। शक्ति की पूजा का सवाल कहां था? शक्ति की पूजा तो संहार के बाद होती है। जो जीत जाता है वह पूज्य बन जाता है, जो हारता है वह पूजक।

हालांकि पूजा का सीमित भाव सभ्य समाजों में भी होता है, लेकिन वह नायकों की होती है, शक्तिमानों की नहीं। शक्तिमानों की पूजा कमजोर, काहिल और पराजित समाज करता है। शिव की पूजा नायक की पूजा है। शक्ति की पूजा वह नहीं है। मिथकों में जो रावण पूजा है, वह शक्ति की पूजा है। ताकत की पूजा, महाबली की वंदना।

लेकिन देवी के रूप में शक्ति की पूजा का क्या अर्थ है? अर्थ गूढ़ भी है और सामान्य भी। पूरबी समाज में मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था थी। पश्चिम के पितृसत्तात्मक समाज-व्यवस्था

के ठीक उलट। पूरब सांस्कृतिक रुप से बंग भूमि है, जिसका फैलाव असम तक है। यही भूमि शक्ति देवी के रूप में उपासक है। शक्ति का एक अर्थ भग अथवा योनि भी है। योनि प्रजनन शक्ति का केंद्र है। प्राचीन समाजों में भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए जो यज्ञ होते थे, उसमें स्त्रियों को नग्न करके घुमाया जाता था। पूरब में स्त्री पारंपरिक रूप से शक्ति की प्रतीक मानी जाती रही है। इस परंपरा का इस्तेमाल ब्राह्मणों ने अपने लिए सांस्कृतिक रुप से किया। गैर-ब्राह्मणों को ब्राह्मण अथवा आर्य संस्कृति में शामिल करने का सोचा-समझा अभियान था। आर्य संस्कृति का इसे पूरब में विस्तार भी कह सकते हैं। विस्तार के लिए यहां की मातृसत्तात्मक संस्कृति से समरस होना जरूरी था। सांस्कृतिक रुप से यह भी समन्वय था। पितृसत्तात्मक संस्कृति से मातृसत्तात्मक संस्कृति का समन्वय। आर्य संस्कृति को स्त्री का महत्त्व स्वीकारना पड़ा, उसकी ताकत रेखांकित करनी पड़ी। देव की जगह देवी महत्वपूर्ण हो गयी। शक्ति का यह पूर्व-रूप (पूरबी रूप) था जो आर्य संस्कृति के लिए अपूर्व (पहले न हुआ) था।

महिषासुर और दुर्गा के मिथक क्या हैं?

लेकिन महिषासुर और दुर्गा के मिथक हैं, वह क्या है? दुर्भाग्यपूर्ण है कि अब तक हमने अभिजात ब्राह्मण नजरिये से ही इस पूरी कथा को देखा है। मुझे स्मरण है १९७१ में भारत-पाक युद्ध और बंग्लादेश के निर्माण के बाद तत्कालीन जनसंघ नेता अटलबिहारी वाजपेयी ने तब की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को अभिनव चंडी दुर्गा कहा था। तब तक कम्युनिस्ट नेता डांगे सठियाये नहीं थे। उन्होंने इसका तीखा विरोध करते हुए कहा था कि *'अटल बिहारी नहीं जान रहे हैं कि वह क्या कह रहे हैं और श्रीमती गांधी नहीं जान रही हैं कि वह क्या सुन रही हैं। दोनों को यह जानना चाहिए कि चंडी दुर्गा दलित और पिछड़े तबकों की संहारक थी।'* डांगे के वक्तव्य के बाद इंदिरा गांधी ने संसद में ही कहा था *'मैं केवल इंदिरा हूं और यही रहना चाहती हूं।'*

महिषासुर और दुर्गा की कथा का शूद्र पाठ (और शायद शुद्ध भी) इस तरह है। महिष का मतलब भैंस होता है। महिषासुर यानी महिष का असुर। असुर मतलब सुर से अलग। सुर का मतलब देवता। देवता मतलब ब्राह्मण या सवर्ण। सुर कोई काम नहीं करते। असुर मतलब जो काम करते हों। आज के अर्थ में कर्मी। महिषासुर का अर्थ होगा भैंस पालने वाले लोग अर्थात् भैंसपालक। दूध का धंधा करने वाला। ग्वाला। असुर से अहुर फिर अहीर भी बन सकता है। महिषासुर यानी भैंसपालक बंग देश के वर्चस्व प्राप्त जन रहे होंगे। नस्ल होगी द्रविड़। आर्य संस्कृति के विरोधी भी रहे होंगे। आर्यों को इन्हें पराजित करना था। इन लोगों ने दुर्गा का इस्तेमाल किया। बंग देश में वेश्याएं दुर्गा को अपने कुल का बतलाती हैं। दुर्गा की प्रतिमा बनाने में आज भी वेश्या के घर से थोड़ी मिट्टी जरुर मंगायी जाती है। भैंसपालक के नायक महिषासुर को मारने में दुर्गा को नौ रात लग गयी। जिन ब्राह्मणों ने उन्हें भेजा था, वे सांस रोक कर नौ रात तक इंतजार करते रहे। यह कठिन साधना थी।

बल नहीं तो छल। छल का बल। नौवीं रात को दुर्गा को सफलता मिल गयी, उसने महिषासुर का वध कर दिया। खबर मिलते ही आर्यों (ब्राह्मणों) में उत्साह की लहर दौड़ गयी। महिषासुर के लोगों पर वह टूट पड़े और उनके मुंड (मस्तक) काटकर उन्होंने एक नयी तरह की माला बनायी। यही माला उन्होंने दुर्गा के गले में डाल दी। दुर्गा ने जो काम किया, वह तो इंद्र ने भी नहीं किया था। पार्वती ने भी शिव को पटाया भर था, संहार नहीं किया था। दुर्गा ने तो अजूबा किया था। वह सबसे महत्त्वपूर्ण थीं। सबसे अधिक धन्या शक्ति का साक्षात् अवतार!

(हिंदी के प्रतिनिधि कथाकार, चिंतक व राजनीतिकर्मी प्रेमकुमार मणि का यह लेख महिषासुर शहादत आंदोलन का प्रस्थान बिंदु है। उन्होंने यह लेख लगभग एक दशक पूर्व दैनिक हिन्दुस्तान के पटना के संस्करण के लिए लिखा था। उसके बाद यह पटना से प्रकाशित 'जन विकल्प' के अक्टूबर, 2007 अंक में प्रकाशित हुआ। लेकिन उसके बावजूद यह लेख 'फारवर्ड प्रेस' के अक्टूबर, 2011 अंक में प्रकाशित होने तक अलक्षित ही रहा। 'फारवर्ड प्रेस' में प्रकाशित होने के बाद इस महत्वपूर्ण लेख पर बुद्धिजीवियों तथा जेएनयू के छात्रों के नजर गयी, उसके बाद से उत्तर भारत में विशद पैमाने पर महिषासुर विषयक आंदोलन का जन्म हुआ। मो. 9431662211)

हत्याओं का जश्न क्यों?

प्रेमकुमार मणि

जब असुर एक प्रजाति है तो उसके हार या उसके नायक की हत्या का उत्सव किस सांस्कृतिक मनोवृति का परिचायक है? अगर कोई गुजरात नरसंहार का उत्सव मनाए या सेनारी में दलितों की हत्या का उत्सव, भूमिहारों की हत्या का उत्सव, तो कैसा लगेगा? माना कि असुरों के नायक महिषासुर की हत्या दुर्गा ने की और असुर परास्त हो गए तो इसे प्रत्येक वर्ष उत्सव के रूप में मनाने की क्या जरूरत है? आप इसके माध्यम से एक बड़े तबके को अपमानित ही तो कर रहे हैं।

महिषासुर की शहादत दिवस के पीछे किसी के अपमान की मानसिकता नहीं है। इसके बहाने हम चिंतन कर रहे हैं आखिर हम क्यों हारे। इतिहास में तो हमारे नायक की छलपूर्वक हत्या हुई, परंतु हम आज भी क्यों छले जा रहे हैं। हम इतिहास से सबक लेकर वर्तमान में अपने को उठाना चाहते हैं। महिषासुर शहादत दिवस के पीछे किसी को अपमानित करने का लक्ष्य नहीं हैं।

हमारे सारे प्रतीकों को लुप्त किया जा रहा है। यह तो उन्हीं के स्रोतों से पता चला है कि एकलव्य अर्जुन से ज्यादा बड़ा धनुर्धर था। तो अर्जुन के नाम पर ही पुरस्कार क्यों दिए जा रहे हैं, एकलव्य के नाम पर क्यों नहीं? इतिहास में हमारे नायकों को पीछे कर दिया गया। आज भी हमारे प्रतीकों को अपमानित किया जा रहा है। हमारे नायकों के छलपूर्वक अंगूठा और सर काट लेने की परंपरा पर हम सवाल कर रहे हैं। इन नायकों का अपमान हमारा अपमान है।

आजकल गंगा को बचाने की बात हो रही है। तो इसका तात्पर्य यह तो नहीं कि नर्मदा, गंडक या अन्य नदियों को तबाह किया जाय। अगर गंगा के किनारे जीवन बसता है तो नर्मदा, गंडक आदि नदियों के किनारे भी तो उसी तरह जीवन है। गंगा को स्वच्छ करना है तो इसका तात्पर्य यह तो नहीं कि नर्मदा को गंदा कर देना है। हम तो एक पोखर को भी उतना ही जरूरी मानते हैं, जितना गंगा को। गाय पूजनीय है तो इसका अर्थ यह तो नहीं निकाला जा सकता कि भैंस को मारो। जितना महत्वपूर्ण गाय है उतनी ही महत्वपूर्ण भैंस भी है। बल्कि भैंस का भारतीय समाज में कुछ ज्यादा ही योगदान है। भौगोलिक कारणों से भैंस से ज्यादा परिवारों का जीवन चलता है। अगर गाय की पूजा हो सकती है तो उससे ज्यादा महत्वपूर्ण भैंस की पूजा क्यों नहीं? भैंस को शेर मार रहा है और आप उसे देखकर उत्सव मना रहे हैं! क्या कोई शेर का दूध पीता है? शेर को तो बाडे में ही रखना होगा अन्यथा आबादी तबाह होगी। आपका यह कैसा प्रतीक है? प्रतीकों के रूप में क्या कर रहे हैं आप?

हम अपने मिथकीय नायकों के माध्यम से अपने पौराणिक इतिहास से जुड़ रहे हैं। हमारे नायकों के अवशेषों को नष्ट किया गया है। बुद्ध ने क्या किया था कि उनके विचारों को भारत से तड़ीपार कर दिया गया। अगर राहुल सांकृत्यायन और डॉ अम्बेडकर उन्हें जीवित करते हैं तो यह अनायास तो नहीं ही है। महिषासुर के बहाने हम इसके और भीतर जा रहे हैं। अगर महिषासुर लोगों के दिलों को छू रहा है तो इसमें जरूर कोई बात तो होगी। यह पिछड़े तबकों का नवजागरण है। हम अपने आप को जगा रहे हैं। हम अपने प्रतीकों के साथ उठ खड़ा होना चाहते हैं। दूसरे को तबाह करना हमारा लक्ष्य नहीं हैं। हमारा कोई संकीर्ण दृष्टिकोण नहीं है। यह एक राष्ट्रभक्ति और देश भक्ति का काम है। एक महत्वपूर्ण मानवीय काम।

महिषासुर दिवस मनाने से अगर आपकी धार्मिक भावनाएं आहत हो रही हैं; तो हों। आपकी इस धार्मिक तुष्टि के लिए हम शूद्रों का अछूत बनाए रखना, स्त्रियों को सती प्रथा में नहीं झोंकना चाहते। हम आपकी इस तुच्छ धार्मिकता का विरोध करते हैं। ब्राम्हण को मारने से दंड और दलित को मारने से मुक्ति यह कहां का धर्म है? यह आपका धर्म हो सकता है हमारा नहीं। हमें तो जिस प्रकार गाय में जीवन दिखाई देता है उसी प्रकार सुअर में भी। हम धर्म को बड़ा रूप देना चाहते हैं। इसे गाय से भैंस तक ले जाना चाहते हैं। हम तो चाहते हैं कि एक मुसहर का सूअर भी न मरे। हम आपसे ज्यादा धार्मिक हैं।

आपका धर्म तो पिछड़ों को अछूत मानने में हैं तो क्या हम आपकी धार्मिक तुष्टि के लिए अपने आपको अछूत मानते रहें। संविधान सभा में ज्यादातर जमींदार कह रहे थे कि जमींदारी प्रथा समाप्त हो जाने से हमारी जमीनें चली जाएगीं तो हम मारे जाएंगे। तो क्या इसका तात्पर्य यह होना चाहिए कि जमींदारी प्रथा को जारी रखना चाहिए? दरअसल, आपका निहित स्वार्थ हमारे स्वार्थों से टकरा रहा है। वह हमारे नैसर्गिक अधिकार को भी लील रहा है। आपका स्वार्थ और हमारा स्वार्थ अलग रहा है, हम इसमें संगति बैठाना चाहते हैं।

दुर्गा का अभिनंदन और हमारे हार का उत्सव आपके सांस्कृतिक सुख के लिए है। लेकिन आपका सांस्कृतिक सुख तो सती प्रथा, वर्ण व्यवस्था, छूआछूत, कर्मकाण्ड आदि में है तो क्या हम आपकी संतुष्टि के लिए अपना शोषण होने दें? आपकी धार्मिकता में खोट है।

मौजूदा प्रधानमंत्री गीता को भेंटस्वरूप देते हैं। गीता वर्णव्यवस्था को मान्यता देती है। हमारे पास तो बुद्धचरित और त्रिपिटक भी है। हम सम्यक समाज की बात कर रहे हैं। आप धर्म के नाम पर वर्चस्व और असमानता की राजनीति कर रहे हैं जबकि हमारा यह संघर्ष बराबरी के लिए है।

(प्रेमकुमार मणि से जितेंद्र यादव की 2 अक्टूबर 2014 को फोन पर हुई बातचीत का अंश)

असुर होने पर मुझे गर्व है

शिबू सोरेन

'हम आदिवासी भारत के मूलनिवासी हैं। बाहर से आए सभी ने हमारा हक छीना है। हमें हमारे अधिकारों से वंचित रखने के लिए तरह-तरह के पाखंड किए गए। हमें जंगली तो कहा ही गया, इंसान भी नहीं माना गया। खासकर हिन्दू धर्मग्रंथों में तो हमारे लिए असुर शब्द का इस्तेमाल किया गया। लेकिन मुझे गर्व है कि मैं असुर हूं और मुझे अपनी धरती से प्यार है।' - यह कहना है झारखण्ड के पूर्व मुख्यमंत्री 68 वर्षीय शिबू सोरेन का।

फोन पर सोरेन की आवाज बहुत स्पष्ट सुनाई नहीं देती। उम्र अधिक होने और अस्वस्थ होने की वजह से वे और अधिक बात नहीं कर पाते। लेकिन जब 'फॉरवर्ड प्रेस' के उप संपादक नवल किशोर कुमार ने उनसे फोन पर बात की तो उन्होंने अत्यंत ही सहज तरीके से रावण को अपना कुलगुरु बताया।

दिशोम गुरु (यानी देश का गुरु) का दर्जा प्राप्त कर चुके शिबू सोरेन बताते हैं कि '*जब बचपन में हम रावणवध और महिषासुरमर्दिनी दुर्गा के बारे में सुनते थे, तब अजीब सा लगता था। अजीब लगने की वजह यह थी कि महिषासुर और उसकी वेशभूषा बिल्कुल हम लोगों के जैसी थी। वह हमारी तरह ही जंगलों में रहता था। भैंसें चराता था। शिकार करता था। फिर एक सवाल जो मुझे परेशान करता था, वह यह कि आखिर देवताओं को हम असुरों के साथ युद्ध क्यों लड़ना पड़ा होगा। फिर जब और बड़ा हुआ तो सारी बात समझ में आई कि यह सब अभिजात्य वर्ग की साजिश थी, हमारे जल, जंगल और जमीन पर अधिकार करने के लिए।*'

शिबू सोरेन कहते हैं कि जब उन्हें वर्ष 2005 में झारखंड का मुख्यमंत्री बनने का पहला मौका मिला तब उन्होंने झारखंड में रहने वाली 'असुर' जाति के लोगों के कल्याण के लिए एक विशेष सर्वे कराने की योजना बनाई थी। इसका उद्देश्य यह था कि विलुप्त हो रहे इस जाति को बचाया जा सके और इन्हें समाज की मुख्य धारा में जोड़ा जा सके। इनका यह भी कहना है कि वर्ष 2008 में दूसरी बार मुख्यमंत्री बनने पर भी '*मैंने इस दिशा में एक ठोस नीति बनाने की पहली की। लेकिन ऐसा नहीं हो सका।*' बहरहाल, श्री सोरेन चाहते हैं कि '*आज की युवा पीढ़ी अभिजात्यों द्वारा फैलाए गये अंधविश्वास की सच्चाई को समझे और नए समाज के निर्माण में योगदान दे।*'

(फारवर्ड प्रेस के अक्टूबर, 2012 अंक से साभार)

देखो मुझे, महाप्रतापी महिषासुर की वंशज हूं मैं

अश्विनी कुमार पंकज

विजयादशमी, दशहरा या नवरात्रि का हिन्दू धार्मिक उत्सव, 'असुर' राजा महिषासुर व उसके अनुयायियों के आर्यों द्वारा वध और सामूहिक नरसंहार का अनुष्ठान है। समूचा वैदिक साहित्य सुर-असुर या देव-दानवों के युद्ध वर्णनों से भरा पड़ा है। लेकिन सच क्या है? असुर कौन हैं, और भारतीय सभ्यता, संस्कृति और समाज-व्यवस्था के विकास में उनकी क्या भूमिका रही है? इस दशहरा पर, आइये मैं आपका परिचय असुर वंश की एक युवती से करवाता हूं।

वास्तव में, सदियों से चले आ रहे असुरों के खिलाफ हिंसक रक्तपात के बावजूद आज भी झारखंड और छत्तीसगढ़ के कुछ इलाकों में 'असुरों' का अस्तित्व बचा हुआ है। ये असुर कहीं से हिंदू धर्मग्रंथों में वर्णित 'राक्षस' जैसे नहीं हैं। हमारी और आपकी तरह इंसान हैं। परंतु 21वीं सदी के भारत में भी असुरों के प्रति न तो नजरिया बदला है और न ही उनके खिलाफ हमले बंद हुए हैं। शिक्षा, साहित्य, राजनीति आदि जीवन-समाज के सभी अंगों में 'राक्षसों' के खिलाफ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण का ही वर्चस्व है।

भारत सरकार ने 'असुर' को आदिम जनजाति की श्रेणी में रखा है। अर्थात् आदिवासियों में भी प्राचीन। घने जंगलों के बीच ऊंचाई पर बसे नेतरहाट पठार पर रहने वाली सुषमा इसी 'आदिम जनजाति' असुर समुदाय से आती है। सुषमा गांव सखुआपानी (डुम्बरपाट), पंचायत गुरदारी, प्रखण्ड बिशुनपुर, जिला गुमला (झारखंड) की रहने वाली है। वह अपने आदिम आदिवासी समुदाय असुर समाज की पहली रचनाकार है। यह साधारण बात नहीं है। क्योंकि वह उस असुर समुदाय से आती है जिसका लिखित अक्षरों से हाल ही में रिश्ता कायम हुआ है। सुषमा इंटर पास है पर अपने समुदाय के अस्तित्व के संकट को वह बखूबी पहचानती है। झारखंड का नेतरहाट, जो एक बेहद खूबसूरत प्राकृतिक रहवास है असुर आदिवासियों का, वह बिड़ला के बाक्साइट दोहन के कारण लगातार बदरंग हो रहा है। आदिम जनजातियों के लिए केन्द्र और झारखंड के राज्य सरकारों द्वारा आदिम जनजाति के लिए चलाए जा रहे विशेष कल्याणकारी कार्यक्रमों और बिड़ला के खनन उद्योग के बावजूद असुर आदिम आदिवासी समुदाय विकास के हाशिए पर है। वे अघोषित और अदृश्य युद्धों में लगातार मारे जा रहे हैं। वर्ष 1981 में झारखंड में असुरों की जनसंख्या 9100 थी जो वर्ष 2003 में घटकर 7793 रह गई है। जबकि आज की तारीख में छत्तीसगढ़ में असुरों की कुल आबादी महज 305 है। वैसे छत्तीसगढ़ के अगरिया आदिवासी समुदाय को वैरयर एल्विन ने असुर ही माना है। क्योंकि असुर और अगरिया दोनों ही समुदाय प्राचीन

धातुवैज्ञानिक हैं जिनका परंपरागत पेशा लोहे का शोधन रहा है। आज के भारत का समूचा लोहा और स्टील उद्योग असुरों के ही ज्ञान के आधार पर विकसित हुआ है लेकिन उनकी दुनिया के औद्योगिक विकास की सबसे बड़ी कीमत भी इन्होंने ही चुकायी है। 1872 में जब देश में पहली जनगणना हुई थी, तब जिन 18 जनजातियों को मूल आदिवासी श्रेणी में रखा गया था, उसमें असुर आदिवासी पहले नंबर पर थे, लेकिन पिछले डेढ़ सौ सालों में इस आदिवासी समुदाय को लगातार पीछे ही धकेला गया है।

झारखंड और छत्तीसगढ़ के अलावा पश्चिम बंगाल के तराई इलाके में भी कुछ संख्या में असुर समुदाय रहते हैं। वहां के असुर बच्चे मिट्टी से बने शेर के खिलौनों से खेलते तो हैं, लेकिन उनके सिर काट कर। क्योंकि उनका विश्वास है कि शेर उस दुर्गा की सवारी है, जिसने उनके पुरखों का नरसंहार किया था।

बीबीसी की एक रपट में जलपाईगुड़ी ज़िले में स्थित अलीपुरदुआर के पास माझेरडाबरी चाय बागान में रहने वाले दहारु असुर कहते हैं, महिषासुर दोनों लोकों- यानी स्वर्ग और पृथ्वी, पर सबसे ज्यादा ताकतवर थे। देवताओं को लगता था कि अगर महिषासुर लंबे समय तक जीवित रहा तो लोग देवताओं की पूजा करना छोड़ देंगे। इसलिए उन सबने मिल कर धोखे से उसे मार डाला। महिषासुर के मारे जाने के बाद ही हमारे पूर्वजों ने देवताओं की पूजा बंद कर दी थी। हम अब भी उसी परंपरा का पालन कर रहे हैं।

सुषमा असुर भी झारखंड में यही सवाल उठाती है। वह कहती है- *'मैंने स्कूल की किताबों में पढ़ा है कि हमलोग राक्षस हैं और हमारे पूर्वज लोगों को सताने, लूटने, मारने का काम करते थे। इसीलिए देवताओं ने असुरों का संहार किया। हमारे पूर्वजों की सामूहिक हत्याएं की। हमारे समुदाय का नरसंहार किया। हमारे नरंसहारों के विजय की स्मृति में ही हिंदू लोग दशहरा जैसे त्योहारों को मनाते हैं। जबकि मैंने बचपन से देखा और महसूस किया है कि हमने किसी का कुछ नहीं लूटा। उल्टे वे ही लूट-मार कर रहे हैं। बिड़ला हो, सरकार हो या फिर बाहरी समाज हो, इन सभी लोगों ने हमारे इलाकों में आकर हमारा सबकुछ लूटा और लूट रहे हैं। हमें अपने जल, जंगल, जमीन ही नहीं बल्कि हमारी भाषा-संस्कृति से भी हर रोज विस्थापित किया जा रहा है। तो आपलोग सोचिए राक्षस कौन है?'*

यहां यह जानना भी प्रासंगिक होगा कि भारत के अधिकांश आदिवासी समुदाय 'रावण' को अपना वंशज मानते हैं। दक्षिण के अनेक द्रविड़ समुदायों में रावण की आराधना का प्रचलन है। बंगाल, उड़ीसा, असम और झारखंड के आदिवासियों में सबसे बड़ा आदिवासी समुदाय 'संताल' भी स्वयं को रावण वंशज घोषित करता है। झारखंड-बंगाल के सीमावर्ती इलाके में तो बकायदा नवरात्रि या दशहरा के समय ही 'रावणोत्सव' का आयोजन होता है। यही नहीं संताल लोग आज भी अपने बच्चों का नाम 'रावण' रखते हैं। झारखंड में जब 2008 में 'यूनाइटेड प्रोग्रेसिव एलायंस' (यूपीए) की सरकार बनी थी संताल आदिवासी समुदाय के शिबू सोरेन जो उस वक्त झारखंड के मुख्यमंत्री थे, उन्होंने रावण को महान

विद्वान और अपना 'कुलगुरु' बताते हुए दशहरे के दौरान रावण का पुतला जलाने से इंकार कर दिया था। मुख्यमंत्री रहते हुए सोरेन ने कहा था कि कोई व्यक्ति अपने कुलगुरु को कैसे जला सकता है, जिसकी वह पूजा करता है? गौरतलब है कि रांची के मोरहाबादी मैदान में पंजाबी और हिंदू बिरादरी संगठन द्वारा आयोजित विजयादशमी त्योहार के दिन मुख्यमंत्री द्वारा ही रावण के पुतले को जलाने की परंपरा है। भारत में आदिवासियों के सबसे बड़े बुद्धिजीवी और अंतरराष्ट्रीय स्तर के विद्वान स्व. डा. रामदयाल मुण्डा का भी यही मत था।

ऐसा नहीं है कि सिर्फ आदिवासी समुदाय और दक्षिण भारत के द्रविड़ लोग ही रावण को अपना वंशज मानते हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बदायूं के मोहल्ला साहूकारा में भी सालों पुराना रावण का एक मंदिर है, जहां उसकी प्रतिमा भगवान शिव से बड़ी है और जहां दशहरा 'शोक दिवस' के रूप में मनाया जाता है। इसी तरह इंदौर में रावण प्रेमियों का एक संगठन है, लंकेश मित्र मंडल। राजस्थान के जोधपुर में गोधा एवं श्रीमाली समाज वहां के रावण मंदिर में प्रति वर्ष दशानन श्राद्ध कर्म का आयोजन करते हैं और दशहरे पर सूतक मानते हैं। गोधा एवं श्रीमाली समाज का मानना है कि रावण उनके पुरखे थे व उनकी रानी मंदोदरी यहीं के मंडोरकी थीं। पिछले वर्ष जेएनयू में भी दलित-आदिवासी और पिछड़े वर्ग के छात्रों ने ब्राह्मणवादी दशहरा के विरोध में आयोजन किया था।

सुषमा असुर पिछले वर्ष बंगाल में संताली समुदाय द्वारा आयोजित 'रावणोत्सव' में बतौर मुख्य अतिथि शामिल हुई थी। अभी बहुत सारे लोग हमारे संगठन 'झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा' को अप्रोच करते हैं सुषमा असुर को देखने, बुलाने और जानने के लिए। सुषमा दलित-आदिवासी और पिछड़े समुदायों के इसी सांस्कृतिक संगठन से जुड़ी हुई है। कई जगहों पर जा चुकी और नये निमंत्रणों पर सुषमा कहती है; *'मुझे आश्चर्य होता है कि पढ़ा-लिखा समाज और देश अभी भी हम असुरों को 'कई सिरों', 'बड़े-बड़े दांतो-नाखुनों' और 'छल-कपट जादू जानने' वाला जैसा ही राक्षस मानता है। लोग मुझमे 'राक्षस' ढूंढते हैं पर उन्हें निराशा हाथ लगती है। बड़ी मुश्किल से वे स्वीकार कर पाते हैं कि मैं भी उन्हीं की तरह एक इंसान हूं। हमारे प्रति यह भेदभाव और शोषण-उत्पीड़न का रवैया बंद होना चाहिए। अगर समाज हमें इंसान मानता है तो उसे अपने धार्मिक पूर्वाग्रहों को तत्काल छोड़ना होगा और सार्वजनिक अपमान व नस्लीय संहार के उत्सव 'विजयादशमी' को राष्ट्रीय शर्म के दिन के रूप में बदलना होगा।'*

(फारवर्ड प्रेस के अक्टूबर, 2012 अंक से साभार)

महिषासुर की याद

जितेंद्र यादव

बचपन में दुर्गा पूजा के पंडालों में भैंस पर सवार महिषासुर को देखकर अपनत्व महसूस होता था। पिछड़ी जाति बहुल हमारे गांव में महिषासुर जैसे कद-काठी के कई लोग थे, परंतु दुर्गा जैसी एक भी महिला देखने को नहीं मिली। पशुपालन के पारंपरिक पेशा के कारण भैंस से आत्मीय लगाव स्वाभाविक ही था। 'चारागाह' की तरफ अक्सर हम भैंस की पीठ पर चढ़ कर जाया करते थे। बाद में लालू प्रसाद को सवर्ण कार्टूनिस्टों द्वारा भैंस के साथ दिखाया जाना तथा भैंस के बच्चे 'पाड़ा' (भैंसा) को 'मुलायम' नाम दिया जाना समाज की जातीय पहचान को दर्शाता है। रेल मंत्री के रुप में लालू प्रसाद को रेल रुपी भैंस की सवारी वाला कार्टून आज भी सवर्ण मानसिकता को संतुष्ट करता है। जेएनयू में 'फारवर्ड प्रेस' में प्रेमकुमार मणि का लेख 'किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन' पढ़ने के बाद बचपन की स्मृतियां, कार्टून सब एक दूसरे से जुड़ने लगे और पता चला कि महिषासुर से पिछड़ों का पुराना रिश्ता है, वे हमारे पूर्वज हैं।

इतिहास में महिषासुर

महिषासुर बंग प्रदेश के राजा थे। बंग प्रदेश अर्थात् गंगा-यमुना के दोआब में बसा उपजाऊ मैदान जिसे आज बंगाल, बिहार, उड़ीसा और झारखंड के नाम से जाना जाता है। कृषि आधारित समाज में भूमि का वही महत्व था जो आज उर्जा के प्राकृतिक स्रोतों का है। बंग प्रदेश की उपजाऊ जमीनों पर अधिकार के लिए आर्यों ने कई बार हमले किए परंतु राजा महिषासुर की संगठित सेना से उन्हें पराजित होना पड़ा। 'बल नहीं तो छल, छल का बल।' महिषासुर की हत्या छल से एक सुंदर कन्या दुर्गा के द्वारा की गई। दुर्गा नौ दिनों तक महिषासुर के महल में रही और अंततः उसने उनकी हत्या कर दी। इन नौ दिनों तक आर्यों के नेता जिन्हें देवता कहा जाता है, महिषासुर के किले के चारो तरफ जंगलों में भूखे-प्यासे छिपे रहे। यही कारण है कि दशहरा के दौरान आठ दिनों का व्रत-उपवास का प्रचलन है। सवर्णों द्वारा महिषासुर की हत्या को न्यायसंगत ठहराने के लिए तरह-तरह के कुतर्क गढ़े गए, उन्हें अत्याचारी, राक्षस आदि संबोधनों से अपने ही लोगों के बीच बदनाम किया गया। इस तरह अपनी जमीन, अपनी प्रजा और अपने राज्य की रक्षा के लिए राजा महिषासुर ने कुर्बानी दी।

असुर भारत के मूलनिवासी

संस्कृति और भाषा कैसे वर्चस्व स्थापित करती है, हिन्दू/आर्य/देव/ब्राम्हण संस्कृति इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। असुर/दैत्य/राक्षस आदि शब्दों में घृणा भरे गए, उनकी भयानक तस्वीरें गढ़ी गईं। जबकि ये शब्द ब्राम्हण संस्कृति के शब्दों के विपरीतार्थक हैं। 'असुर' अर्थात् जो 'सुर'

नहीं है। जो देवता नहीं है वह दानव है। जो आर्य नहीं वह अनार्य है। जबकि अर्थ लगाया गया कि देवता अच्छे हैं और दानव खराब हैं। आर्य अच्छे हैं और अनार्य बुरे हैं। हिन्दू धर्म में जिन्हें राक्षस/असुर कहा जाता है वे दरअसल यहां के मूलनिवासी (पिछड़ा/दलित/आदिवासी) हैं।

हिन्दू धर्मग्रंथ असुर और सुर की कहानियों से भरे पड़े हैं। इन सभी कहानियों में असुरों को बलशाली और सुखी-संपन्न दिखाया गया है। रावण की तो सोने की लंका ही थी। असुर अथवा कथित राक्षसों के चाल-चरित्र से लगता है कि वे लोग बेहद मानवीय थे। अपनी संपत्ति और अपनी जनता की सुरक्षा के लिए देवताओं/आर्यों से उनका संघर्ष था। असुरों ने किसी के साथ छल नहीं किया। इसके विपरीत देवता/सूर/आर्यों ने हमेशा इन्हें छला है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में आर्यों की छलपूर्वक जीत की कहानियां भरी पड़ी हैं।

दरअसल अनार्य, जो यहां के मूल निवासी थे, के पास प्राकृतिक संसाधनों का अपार भंडार था, जिस पर आर्य कब्जा करना चाहते थे। कोई भी जाति जब किसी दूसरी जाति के संसाधनों पर कब्जा करना चाहती है तो पहले वह उसे बर्बर घोषित करती है। आज अमेरिका भी आतंकवाद के नाम पर इराक, अफगानिस्तान आदि मुल्कों पर प्राकृतिक संसाधनों के लिए घात लगाये हुए है। 'मुसलमान' शब्द को आज खौफ और घृणा का पर्याय बना दिया गया है। आर्यों ने भी यही किया। उन्होंने भी संसाधनों पर कब्जा करने के लिए महिषासुर की हत्या की। उनकी हत्या के बाद बंग प्रदेश के उपजाऊ भूमि पर आर्यों ने कब्जा कर लिया और यहां के मूलनिवासियों को गुलाम बना लिया। यह गुलामी आज तक चल रही है जिसके कारण मूलनिवासियों की हालत बद से बदतर है और वे आज भी सत्ता और संसाधनों से वंचित हैं।

महिषासुर को याद करते हुए हम इतिहास में अपने अस्तित्व की खोज कर रहे हैं। हम जानना चाहते हैं कि आखिर समुद्र मंथन के समय जो लोग शेषनाग (सांप) की मुंह की तरफ थे, जो हजारों की संख्या में मारे गए, उन्हें विष क्यों दे दिया गया? जो लोग पूंछ पकड़े रहे वे अमृत के हकदार कैसे हो गए? आजादी के आंदोलन को यदि समुद्र मंथन कहें, तो पिछड़ों के हिस्से में तो आज भी विष ही आया है। अमृत तो आज भी पूंछ पकड़ने वालों ने ही गटक लिया है। देश के सत्ता, संसाधनों और नौकरियों पर सवर्णों का ही कब्जा है।

हत्या का जश्न 'दशहरा' को प्रतिबंधित किया जाय

महिषासुर की हत्या का जश्न के रुप में मनाया जाने वाला दशहरा से मूलनिवासियों की भावनाएं आहत होती हैं। वैसे भी दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में किसी की हत्या का जश्न मनाना कहां तक जायज है? हम भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और बात-बात पर संज्ञान लेने वाले न्यायपालिका से मांग करते हैं कि दशहरा पर रोक लगाई जाय। हम सामाजिक न्याय की पक्षधर शक्तियों से अपील करते हैं कि सांस्कृतिक आजादी के आंदोलन के लिए एकजुट हों!

(ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट फोरम के राष्ट्रीय अध्यक्ष जितेंद्र यादव जेएनयू के भारतीय भाषा केंद्र में शोधार्थी हैं।मो. 9716839326)

महिषासुर यादव वंश के राजा थे

चंद्रभूषण सिंह यादव

जेएनयू, नई दिल्ली में ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेट्स फोरम द्वारा वर्ष 2011 से 'महिषासुर शहादत दिवस' मनाने से देशभर में एक नई बहस की शुरुआत हुई है। वैसे तो अप्रैल-जून 2011 के अंक में 'यादव शक्ति' पत्रिका ने श्री एन.यादव, लखनऊ द्वारा लिखे 'यदुवंश शिरा. `मणि महिषासुर' शीर्षक लेख का प्रकाशन कर महिषासुर के संदर्भ में एकपक्षीय बातों पर विराम लगाने की कोशिश शुरु कर दी थी लेकिन जेएनयू में जितेन्द्र यादव द्वारा 'महिषासुर शहादत दिवस' की शुरुआत करने के बाद महिषासुर के पक्षधर लोग खुलकर सामने आ गये हैं। मैं यादव होने के नाते निःसंकोच कह सकता हूँ कि उत्तर भारत और खास तौर पर उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल में विकराल रुप धारण कर रहे दुर्गापूजा समारोह में सर्वाधिक सहभागिता यादवों की होती है। महिषासुरमर्दिनी की जय बोलने वाले ज्यादातर लोग यादव बिरादरी के ही हैं। इनके बाद अन्य ओबीसी जातियां और दलित भी पूरे दमखम से महिषासुर विनाशनी दुर्गा के प्रचंड भक्त हैं। ये पिछड़े, दलित नौ दिन नवरात्र व्रत से लेकर हवन, पूजन, बलि, दुर्गा मूर्ति स्थापना आदि में लाखों-लाख खर्च कर रहें हैं। ये कमेरे वर्ग के लोग दुर्गा को शक्तिशाली मानकर नवरात्र में पूरे मनोयोग से पूजा कर रहें हैं और ये उम्मीद करते हैं कि महान बलशाली महिषासुर को मारने वाली दुर्गा प्रसन्न होकर इन्हें प्रतापी बना देगी। इसी उम्मीद में देश का सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा तबका अपना पेट काटकर शक्ति की प्रतीक दुर्गा की आराधना में लगा हुआ है। वह इस पर विचार नहीं करता है कि सुर-असुर संग्राम अर्थात् आर्य-अनार्य संग्राम में आर्य संस्कृति (ब्राह्मणवाद) के घोर विरोधी महिषासुर का वध करने वाली दुर्गा ने प्रकारान्तर से हम पिछड़ों को अपना सामाजिक एवं सांस्कृतिक गुलाम बनाने के लिए हमारे पूर्वज महिषासुर की हत्या छलपूर्वक की थी। हजारों वर्ष पूर्व आर्य संस्कृति की राह में बाधक बने महिषासुर की छलपूर्वक हत्या करने वाली दुर्गा की पूजा अभिजात्य वर्ग के लोग हमसे क्यों करा रहे हैं? क्या देवी दुर्गा वास्तव में शक्ति की देवी है, महाप्रतापी है, दुश्मनों का नाश करने वाली है? यदि है तो गोरी, गजनी, बाबर, डलहौजी, विक्टोरिया का वध इस देवी दुर्गा ने क्यों नहीं किया? क्यों एक भैंसवार, काले-कलूटे, पहलवान, उभरी मांसपेशियों एवं खड़ी मूछों वाले बहादुर महिषासुर का ही वध (हत्या) किया? महिषासुर को यादव कहने पर सबसे अधिक नाराजगी यादवों को होगी, ऐसा मै समझता हूँ। लेकिन सत्य तो सत्य ही रहेगा। हम सत्य को कब तक झुठला सकेंगे। महिषासुर का समास विग्रह महिष-असुर होगा। महिष का अर्थ है भैंस और असुर का अर्थ इस देश के उस मूल निवासी से है जो हिंसा विरोधी एवं प्रकृति का पूजनहार है। हिन्दुस्तान अखबार के 6 जनवरी 2011 के अंक में

सुप्रीम कोर्ट के तत्कालीन जस्टिस श्री मारकण्डेय काटजू एवं श्री ज्ञानसुधा मिश्रा ने अपने एक निर्णय में कहा- राक्षस और असुर कहे जाने वाले लोग ही इस देश के असली नागरिक हैं। सुरा अर्थात् शराब का सेवनहार 'सुर' एवं सुरा अर्थात् शराब के सेवन का विरोधी 'असुर' के रूप में समझा जा सकता है। ऋग्वेद सुरापान (सोमरस) के श्लोकों से भरा पड़ा है। ऋग्वेद, वाल्मिकि रामायण सहित हिन्दू धर्मशास्त्र नरमेघ यज्ञ, गोमेघ यज्ञ, अश्वमेघ यज्ञ आदि के महिमा से महिमामंडित है। असुर या राक्षस का नाम आते ही हमारे सामने एक भयानक रूप दिखने लगता है जो अभिजात्यवर्गीय-ब्राह्मणवादी साहित्य में हमें पढ़ने को मिलता है। सम्पूर्ण ब्राह्मणवादी साहित्य असुरों के विरोध एवं वध (हत्या) से भरा पड़ा है। इस साहित्य में यह कहीं जिक्र नहीं हैं कि असुरों ने मानवता के विरुद्ध कौन सा अपराध किया। असुर नायकों एवं उनकी सेना के वध का एक मात्र कारण इनके यज्ञों का विरोध एवं विष्णु, इन्द्र आदि के सत्ता को चुनौती है। ब्राह्मणवादी ग्रन्थों के मुताबिक यज्ञ विरोधी असुर कहलाये। महिषासुर के पिता रम्भासुर असुरों के राजा थे तथा माता श्यामला राजकुमारी थी। इस देश के मूलनिवासी जिन्हें आर्यों ने साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्व सिन्धु घाटी की सभ्यता को नष्ट कर हजारों वर्ष चले युद्ध में छल-कपट से परास्त कर असुर/अछूत/शूद्र आदि बनाकर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर एवं गुलाम बना लिया और इनके राजाओं एवं नायकों की हत्या कर असुर और राक्षस घोषित कर पुराण कथा में गढ़ डाला। मध्य एशिया, ईरान से भारत आए आर्यों ने यहाँ के मूल निवासियों के सत्ता और संस्कृति पर कब्जा के लिए लम्बे समय तक युद्ध किया और अनेकानेक पतित हथकंडों को अपना कर इस देश के निश्छल ईमानदार, कमेरे, हिंसा विरोधी, प्रकृतिप्रेमी, मूलनिवासियों (असुरों) को मारकर अपनी ब्राह्मणवादी हिंसक संस्कृति का बीजारोपण कर डाला।

मैंने महिषासुर को 'यादव' कहा है। मेरे ऐसा कहने पर प्रतिवाद होगा, जो लाजमी है। लोग प्रमाण मांगेंगे और कहेंगे कि हम महिषासुर को 'यादव' कैसे मान लें? इस देश के सम्पूर्ण शूद्र, पिछड़ों, अन्त्यजनों-कमेरों, अर्जकों, या शोषितों का कोई इतिहास नहीं है। इन पच्चासी प्रतिशत के पिछली चार पीढ़ियों को यदि हम छोड़ दें तो शायद ही कोई व्यक्ति मिलेगा जो दावे के साथ कह सकेगा कि उसकी पिछली पांचवी पीढ़ी पढ़ी-लिखी थी। हम पिछड़ों को हजारों वर्ष से प्रचलित कथाओं, किंवदन्तियों, लक्षणों एवं खुद से मिलते-जुलते नायकों के रूप, रंग, कार्य आदि को जोड़कर ही अपना इतिहास रचना है और मैं इसी आधार पर भी महिषासुर को यादवों के करीब पाता हूँ। यादव का आशय दूध वाला, ग्वाला, भैंसपालक, पशुपालक है। यादव का मतलब पहलवान, गठीला रोबीला बहादुर, नतमस्तक न होने वाला लड़ाकू, सांवले व काले कद काठी का मूँछ रखने वाले रौबदार व्यक्ति से लगाया जाता है। मैं जब महिषासुर और यादवों के इन समानताओं में मेल देखता हूँ तो मुझे यह आभास होता है कि निश्चय ही महिषासुर यादवों के बहादुर पूर्वज रहे होंगे। इसी यादवी समानता के गुणों के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हँ कि असंख्य भैंसों को पालने के नाते इस बहादुर यादव राजा का नाम महिषासुर पड़ा होगा।

महिषासुर को दुर्गा के हाथों क्यों मरवाया गया? जब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे तो ब्राह्मणी ग्रन्थों के मुताबिक अहिल्या का सतीत्व भंग करने वाला, सोमरस पीने एवं मधुपर्क खाने वाला, मेनका-उर्वशी नर्तकियों के नृत्यादि का भोग करने वाला आर्य-संस्कृति का पोषक इन्द्र जब महिषासुर से परास्त हो गया तो आर्य-संस्कृति के संरक्षक सुरों ने सुन्दरी दुर्गा को भेजकर महिषासुर की हत्या कर दी। सामान्य बुद्धि का व्यक्ति भी समझ सकता है कि जिस महिषासुर से इन्द्र एवं इन्द्र की विशाल सेना लड़ पाने में नाकाम रही उसे केवल और केवल एक स्त्री दुर्गा कैसे परास्त कर मार डालेगी? मैने महिषासुर के कृतित्व एवं व्यक्ति में समानता के आधार पर उसे यादव बताया है वहीं इतिहासकार डी.डी. कौशाम्बी ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता' में लिखा है कि *"जिन पशुपालक लोगों (गवलियों) ने इन वर्तमान देवों को स्थापित किया है, वे इन पुराने महापाषाणों के निर्माता नहीं थे, उन्होंने चट्टानों पर खांचे बनाकर महापाषाणों के अवशेषों का अपने पूजा स्थलों के लिए स्तूपनुमा शवाधानों के लिए सिर्फ पुनः उपयोग ही किया है। उनका पुरुष देवता म्हसोबा या इसी कोटि का कोई देवता बन गया, आरम्भ में पत्नी रहित था और कुछ समय के लिए खाद्य संकलनकर्ताओं की अधिक प्राचीन मातृदेवी से उसका संघर्ष भी चला। परन्तु जल्दी ही इन दोनों मानवसमूहों का एकीकरण हुआ और फलस्वरूप इनके देवी देवता का भी विवाह हो गया। कभी-कभी किसी ग्रामीण देव स्थल में महिषासुर-म्हसोबा को कुचलने वाली देवी का दृश्य दिखाई देता है तो 400 मीटर की दूरी पर वही देवी, थोड़ा भिन्न नाम धारण करके, उसी म्हसोबा की पत्नी के रूप में दिखाई देती है। यही देवी ब्राह्मण धर्म में शिव पत्नी पार्वती के रूप में प्रकट हुई, जो महिषासुर मर्दिनी है। कभी-कभी यह पुराने रूप में लौटकर शिव का भी मर्दन करती है। इस सन्दर्भ में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि सिन्धु सभ्यता की एक मुहर पर त्रिमुख वाले जिस आदि रूप शिव की आकृति उकेरी हुई है, उसके सिर के टोप पर भी भैंस के सींग हैं।"* (पृष्ठ-58) उक्त उद्धरण में गवलियों का नाम आया है। गवली और यादव एक ही हैं। इस प्रकार इतिहासकार डी.डी. कौशम्बी ने महिषासुर या म्हसोबा को गवली या यादव माना है।

मैने आर्य और अनार्य की चर्चा की है। भारत में हुई समस्त देव-दानव, देवासुर संग्राम, राम-रावण, वामन-बलि, हिरण्यकश्यप-नरसिंह, महिषासुर-दुर्गा या इन्द्र-कृष्ण युद्ध, आर्य-अनार्य युद्ध ही हैं। चूंकि इतिहास आर्यों ने ही लिखा है। अनार्य शिक्षा से वंचित कर दिये गये थे। देश की पच्चासी प्रतिशत कमेरी अनार्य जनता मुगलों, अंग्रेजों आदि के आने के बाद ही शिक्षा का अधिकार पा सकी है। इसलिए महाभारत में गीता और कृष्ण को आर्य एवं चार वर्णों का रचनाकार बताया गया है तो वहीं ऋग्वेद में कृष्ण को (अनार्य) असुर बताते हुए इन्द्र के हाथों मरवाया गया है। एक ही लेखक वेदव्यास महाभारत में इन्द्र को कृष्ण के हाथों पराजित करता है और वही लेखक वेदव्यास ऋग्वेद में कृष्ण को असुर बताते हुए इन्द्र द्वारा चमड़ा छीलकर कृष्ण को मारने की बात लिखता है। आर्यों के सम्बन्ध में इतिहासकार भगवतशरण उपाध्याय ने अपनी पुस्तक 'खून की छींटें इतिहास के पन्नों पर' में 'ब्राह्मण' नामक अध्याय में लिखा

है कि 'ऋग्वैदिक परम्परा में मै ब्राह्मण भारतीय नहीं हूँ जिस देश से प्राचीन ऋग्वैदिक आर्य भारत में आये थे, मैं भी वहीं से आया था, क्योंकि मैं ही उनका नेता उनका मंत्रदाता था। भारत में मैं (ब्राह्मण) भी अपनी हिंस्त्र टोलियां लिये आया। मै चला तो भूख से आहार की तलाश में था परन्तु मेरा नारा था- 'कृण्वंन्तं विश्वमार्यम्।' इसी तरह महानतम साहित्यकार आचार्य चतुरसेन ने अपनी पुस्तक 'वयं रक्षामः' के अन्तिम पृष्ठ पर लिखा है कि "रावण का यह निधन ऐसा था जिसने सम्पूर्ण अनार्य बल तोड़ दिया था।" आचार्य चतुरसेन ने रावण को सप्तद्वीप पति बताते हुए लिखा है कि बदली भौगोलिक परिस्थितियों में आस्ट्रेलिया, जावा, सुमात्रा, मेडागास्कर, अफ्रीका आदि नाम से प्रसिद्ध देश उसके राज्य के हिस्सा थे। आर्यों के सन्दर्भ में पंडित जवाहरलाल नेहरु ने अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में स्पष्ट लिखा है कि 'भारतीय आर्य और ईरानी अलग होकर अपना-अपना रास्ता लेने से पहले एक ही नस्ल के थे। जाति की दृष्टि से तो दोनों एक थे ही परन्तु उनके पुराने धर्म और भाषा में भी समानता है। वैदिक और जरथ्रुस्त धर्म में बहुत सी बातें एक सी हैं और 'वेद' तथा 'अवेशता' दोनों एक दूसरे से मिलती जुलती हैं।' इस तरह से गैरभारतीय इतिहासकारों के अलावा इन भारतीय इतिहासकारों ने भी आर्यों को विदेशी स्वीकार किया है जिन्होंने आक्रमण करके यहां के मूल निवासियों पर वैदिक संस्कृति थोपकर अपनी राजसत्ता कायम की है।

मैं फिर मूल बिन्दु महिषासुर पर इन कुछ प्रमाणों के बाद आता हूँ। महिषासुर के समस्त लक्षण यादवों से मिलते हैं। हमें या इस देश के मूल निवासियों को अपना इतिहास गोताखोर बनके ढूढ़ना और तलाशना है। यह तलाश लम्बे समय तक चलेगी तब जाकर हमें वैदिक आर्य या ब्राह्मणवादी इतिहास से इतर अपना इतिहास ज्ञात हो सकेगा। अनार्य महापुरुष महिषासुर ने जब इनको परास्त किया तो आर्य खेमे में मायूसी छा गयी। यह मायूसी कैसी थी? यह मायूसी यज्ञ न कर पाने की थी। यज्ञ में क्या होता था? यज्ञ में लाखों गायों, बैलों, भैंसों, घोड़ों, भेड़ों, बकरों को काटकर आर्य लोग चावल मिश्रित मांस पकाकर मधुपर्क के रुप में खाते थे। सोमरस एवं मैरेय (उच्च कोटि का शराब) पीते थे। जौ, तिल, घी, आग में जलाते थे। अनार्य पशुपालक एवं कृषक थे जबकि आर्य मुफ्तखोर थे जो अनार्यों से यह सब कुछ छीनने के लिए युद्ध करते थे। अनार्यों एवं आर्यों के बीच होने वाले इस युद्ध में अनार्यों को यज्ञ विरोधी घोषित कर राक्षस परिभाषित किया जाता था। आर्य सुरा सुन्दरी के सेवनहार थे। अप्सराएं रखना इनका शौक था। समस्त हिन्दू धर्मग्रन्थ जारकर्म को पुण्यकार्य घोषित करते हैं। आर्य उपरोक्त कार्यों को वैदिक सनातन धर्म का आवश्यक अंग बताये तो अनार्यों ने इसके विरुद्ध महिषासुर, बलि, रावण, हिरण्यकश्यप, आदि के रुप में युद्ध किया जिन्हें इन आर्यों ने सीधी लड़ाई में परास्त करने के बजाय धोखे एवं छल से मारा जो इन्होंने खुद द्वारा लिखी किताबों में स्वीकार किया है। महिषासुर से वर्षों लड़ने के बाद जब आर्य राजा इन्द्र परास्त कर पाने के बजाय परास्त होकर भाग खड़ा हुआ तो आर्यों ने 'छल' का सहारा लिया और आर्य कन्या दुर्गा को महिषासुर के पास भेजकर महिषासुर का दिल जीतकर उसे मारने की रणनीति बनाई।

इसी रणनीति के तहत आर्य कन्या दुर्गा ने भिन्न मोहक रुपों एवं अदाओं से महिषासुर जैसे प्रतापी राजा को अपनी रणनीति के तहत फंसाया और दिल जीतकर एवं इतिहासकार डी. डी. कौशम्बी के मतानुसार गवलियों (यादवों) के पुरुष देवता महिषासुर एवं खाद्य संकलनकर्ताओं की मातृदेवी (दुर्गा) का विवाह हो गया। गवलियों से आशय यादवों एवं अनार्यों से है। जबकि खाद्य संकलनकर्ता से आशय आर्यों से है। इतिहासकार भगवत शरण उपाध्याय ने कहा है कि हम ब्राह्मण (आर्य) भारत भूख से आहार की तलाश में चले थे। इसी प्रक्रिया के तहत दुर्गा ने महिषासुर का विश्वास जीतकर महज दस दिनों में धोखे से मार डाला। इस देश के मूल निवासी असुर यादव राजा के कुल खानदान, माता-पिता का नाम, ब्राह्मण एवं आर्य इतिहासकारों के ही मुताबिक ज्ञात है लेकिन आर्य इतिहास में दुर्गा की उत्पत्ति बड़ी दिलचस्प है। दुर्गा के माता-पिता, कुल-खानदान का कोई अता-पता नहीं है। दुर्गा को शिव, यमराज, विष्णु, इन्द्र, चन्द्रमा, वरुण, पृथ्वी, सूर्य, ब्रह्मा वसुओं कुबेर, प्रजापति, अग्नि, सन्ध्या, एवं वायु आदि के विभिन्न अंशों से उत्पन्न कर अन्यान्य देवताओ से अस्त्र-शस्त्र दिलवाया गया है। कोई धर्म भीरु अवैज्ञानिक सोच का व्यक्ति ही इन बातों को स्वीकार कर सकता है। दुर्गा पूजा का जोरदार चलन कोलकाता एवं पश्चिम बंगाल में है। मै 1977 से 1982 तक कोलकाता में ही रहा और पढ़ा हूँ। मैने कोलकाता का दुर्गापूजा बारीकी से देखा है। कोलकाता में दुर्गा प्रतिमा बनाने वाले कारीगर वेश्यालय से थोड़ी मिट्टी जरुर लाते हैं। इस प्रक्रिया का सजीव चित्रण 'देवदास' फिल्म में भी किया गया है। वेश्याऐं दुर्गा को अपना कुल देवी मानती हैं। इसलिए दुर्गा प्रतिमा बनाने में वेश्यालयों से मिट्टी लाने का चलन है। असुर होने एवं आर्यों द्वारा इतिहास लिखने के बावजूद महिषासुर के कुल-खानदान का पता चलता है लेकिन आर्य पुत्री होने के बावजूद दुर्गा के कुल-खानदान का पता नहीं है। गुण एवं लक्षण के आधार पर मेरे जैसा शिक्षक महिषासुर को यादव मान रहा है तो निश्चय ही वेश्याओं द्वारा दुर्गा को कुल देवी मानने के पीछे एक बहुत बड़ा राज छिपा होगा जो सदियों से चला आ रहा है। दुर्गा और महिषासुर की गाथा आर्यों द्वारा हजारों वर्ष पूर्व छलपूर्वक अपनी संस्कृति थोपकर हमें गुलाम बनाने की कहानी का एक हिस्सा है जिस पर पढ़े-लिखे पिछड़े एवं दलितों को व्यापक पैमाने पर शोध करने की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए। परम्परावादी बनकर सड़ी लाश को कंधे पर ढ़ोने की बजाय उसे दफन कर एक नई सभ्यता और संस्कृति विकसित करनी चाहिए जो कमेरों की पक्षधर हो। मैं अपने कुल श्रेष्ठ महाबली महिषासुर की स्मृतियों के समक्ष नतमस्तक हूँ तथा उन तमाम साथियों, पत्रिकाओं, संस्थाओं को धन्यवाद देता हूँ जो अपना इतिहास ढूंढने, लिखने एवं जानने की दिशा में अग्रसर हैं। मै गाजियाबाद में फाइनआर्ट के डिग्री कॉलेज के शिक्षक श्री लाल रत्नाकर को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने महाबली राजा महिषासुर का चित्र बनाया है जिसे 'फारवर्ड प्रेस' ने अक्टूबर 2013 के अंक में छापा है।

('यादव शक्ति' पत्रिका के जनवरी-मार्च, 2013 अंक से साभार, लेखक 'यादव शक्ति' पत्रिका के प्रधान संपादक हैं, मो. 9415369430)

दुर्गासप्तशी का असुर पाठ

अश्विनी कुमार पंकज

हम सबने मार्कण्डेय पुराण में वर्णित 'दुर्गासप्तशी' की कथा पढ़ी है, हिंदू समाज में सुनी है या फिर दुर्गा पूजा अथवा नवरात्रि के धार्मिक आयोजन से थोड़ा बहुत जरूर परिचित हैं। मैं आपको एक मुण्डा आदिवासी कथा सुनाता हूं। कथा इस प्रकार है : जंगल में एक भैंस और भैंसा को एक नवजात बच्ची मिली। दोनों उसे अपने घर ले आए और लड़की को पालपोसकर बड़ा किया। अपूर्व सौंदर्य लिये हुए सोने की काया वाली वह बच्ची जवान हुई। उसके सोने-सी देह और अनुपम सौंदर्य की चर्चा कुछ शिकारियों के द्वारा राजा तक पहुंची। राजा ने छुपकर लड़की को देखा और उसके रूप पर मोहित हो गया। उसने उसका अपहरण करने की कोशिश की। तभी भैंस और भैंसा दोनों वहां आ गए। दोनों को आया देख राजा ने लड़की को बंधक बना लिया और घर का दरवाजा भीतर से बंद कर लिया। भैंस ने दरवाजा खोलने के लिए लड़की को बाहर से आवाज लगायी। लड़की बंधक थी। वह कैसे दरवाजा खोल पाती? उसने बिलखते हुए राजा से आग्रह किया कि वह उसे खोल दे। पर राजा ने लड़की को मुक्त नहीं किया। अंततः भैंस और भैंसा दोनों दरवाजा खोलने की कोशिश करने में सर पटकते-पटकते मर गए। उनके मर जाने के बाद राजा ने बलपूर्वक लड़की को अपनी रानी बना लिया।

आप सोचेंगे 'दुर्गासप्तशी' अथवा दुर्गा पूजा की कहानी जिसमें आदि शक्ति दुर्गा महिषासुर का वध करती है से इस आदिवासी कथा का क्या लेना-देना, इस पर बात करने से पहले एक और आदिवासी कथा का पाठ कर लेना उचित है। जिसे गैर-आदिवासी समाज नहीं जानता है। यह कथा संताल आदिवासी समाज में प्रचलित है। संतालों का एक पर्व है 'दासांय'। जो दुर्गापूजा के समय ही साथ-साथ चलता है। इसमें संताल नवयुवकों की टोली बनती है। जो योद्धाओं की पोशाक में लैश रहते हैं। टोली के आगे-आगे अगुआ के रूप में कोई संताल बुजुर्ग होता है, जो प्रत्येक घर घुसकर गुप्तचरी का स्वांग करता है। दरअसल यह टोली प्रत्येक घर में अपने सरदार को खोजते हैं जो उनसे बिछड़ गया है। इस तरह टोली युद्ध की मुद्रा में नृत्य करते हुए आगे बढ़ती है। इस संताल आदिवासी परंपरा 'दासांय' में टोली जिस सरदार को खोजती है उसका नाम दुरगा होता है। जो अपने दिशोम (देश) में दिकुओं (बाहरी लोग) के अत्याचार और प्रभाव के खिलाफ अपने योद्धाओं के साथ युद्ध करता है। उसके बल और वीरता से दिकु पराजित हो भयभीत रहते हैं। अंत में दिकु लोग छल का सहारा लेते हैं। उसे धोखे से बंदी बनाकर उसकी हत्या करने के लिए एक वेश्या से सहायता मांगते हैं। वेश्या सवाल करती है, 'इसमें उसका क्या लाभ?' तो फिर पुजारी वर्ग उसे

आश्वस्त करते हैं कि अगर रूपजाल में फाँस कर वह दुरगा को बंदी बनाने में साथ देगी तो युगों-युगों तक उसकी पूजा होगी। इस तरह से संतालों का सरदार 'दुरगा' बंदी होता है और मार डाला जाता है। आदिवासी सरदार दुरगा को मारने के ही कारण उस वेश्या को महिषासुरमर्दिनी और दुरगा (दुर्गा) की उपाधि मिली। उसे मारने में नौ दिन और नौ रात लगे थे इसीलिए नवरात्रि का चलन शुरू हुआ। इस तरह से दुर्गा पूजा की शुरुआत हुई। बंगाल इसका केंद्र बना क्योंकि मूलतः संतालों की आबादी पुराने अंग-बंग से सटे इलाके अर्थात् मानभूम में निवास करती थी। इसी कारण दुर्गा प्रतिमा तभी बनती है जब वेश्यालय की एक मुट्ठी मिट्टी उस मिट्टी में मिलाई जाय, जिससे मूर्ति का निर्माण होना है। इस दूसरी आदिवासी कथा से आप पहली कथा, जिसमें जंगल, भैंस और सोने की काया वाली लड़की का रूपक है, आप समझ गये होंगे दुर्गा सप्तशती के साथ उसका क्या संबंध है। दरअसल ये दोनों कथाएं मनुवादी दुर्गा सप्तशती का आदिवासी पाठ है जिसे लोक कथा कह कर पुरोहित वर्ग ने व्यापक जन समाज के सामने आने नहीं दिया। सांस्कृतिक उपनिवेश बनाये रखने के लिए पुरोहित वर्ग और उसकी शिक्षा व्यवस्था ने लोक विश्वास को विश्वसनीय नहीं माना और असहमतियों एवं विरोध के इतिहास को लिखित वेद-पुराणों के तले दबा दिया।

सांस्कृतिक उपनिवेश की स्थापना सत्ता की प्राथमिकता होती है। दोहन, लूट और दमन का राज इसके बिना स्थायी नहीं किया जा सकता है। वाचिक काल में ही पुरोहितों और राजाओं को यह बात अच्छी तरह से समझ में आ गयी थी। वे समझ चुके थे कि स्मृतियों की सीमा है। व्यक्ति के नहीं रहने के साथ ही उसकी स्मृतियों का धीरे-धीरे या तो लोप हो जाता है या फिर वैसी ही प्रामाणिक नहीं रह जातीं जैसी कि वे वास्तव में थीं। इसीलिए वाचिक परंपरा की इस सीमा को समझते, उस पर अविश्वास करते हुए और उसको ध्वस्त करने के लिए उन्होंने दस्तावेजी परंपरा यानी लेखन की शुरुआत की। गुरु-शिष्य प्रणाली की नींव डाली। औद्योगिक काल में उपनिवेशों को अपने अनुकूल बनाने के लिए ज्ञान के प्रसार को शिक्षा व्यवस्था में जकड़ दिया। भारत जैसे पूर्वी विश्व में यह काम पौराणिक काल में मनुस्मृति के द्वारा संपन्न किया जा चुका था। जहां खास सामाजिक वर्गों में कानूनन ज्ञान के विस्तार और हस्तांतरण की मनाही थी। आधुनिक विश्व में मनुवाद को जस का तस रखकर मुठ्ठी भर लोगों की धनलोलुपता और आर्थिक प्रगति के लिए समूची दुनिया की आबादी को नहीं हांका जा सकता था। इसलिए शिक्षा व्यवस्था को मनुवादी आधार पर कुछ यूं खड़ा किया गया कि चित भी मेरी पट भी मेरी। नतीजा है कि शिक्षा ने सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक भागीदारी के लिए श्रमशील सामाजिक वर्ग को उकसाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। परंतु शिक्षा के मनुवादी कलेवर के चलते सांस्कृतिक उपनिवेश लगातार सुदृढ़ होता चला गया। यह सांस्कृतिक दासता का ही उदाहरण है कि देश के आदिवासी और विशेषकर मूलनिवासी मनुवाद के गुलाम हैं और दुर्गा पूजा, रावण वध जैसे धार्मिक परंपराओं से चिपके हुए हैं। इतिहास में हुए अपने ही श्रमशील समुदायों के जनसंहारों के मनुवादी उत्सवों में भागीदार हैं।

सांस्कृतिक उपनिवेश को कोई चुनौती नहीं मिले इसलिए आधुनिक इतिहास को आर्थिक संघर्षों का इतिहास बनाकर पेश किया गया। स्थापित किया गया कि दुनिया में जो भी इंसानी उपक्रम है वह मूलतः आर्थिक है। निश्चय ही बहुत हद तक यह बात सही है। परंतु सांस्कृतिक उपनिवेश का मामला भी इससे कमतर नहीं है। इतिहास में बुद्ध और उनके बाद नानक सरीखे लोग व सूफी परंपरा सांस्कृतिक उपनिवेशीकरण के खिलाफ हुए सांस्कृतिक संघर्ष के मजबूत अध्याय हैं। इतिहास हमें यह भी सबक देता है कि आर्थिक लड़ाइयों में सभी की दिलचस्पी है क्योंकि इस लड़ाई में 'असली दुश्मन' सुरक्षित रहते हैं। आर्थिक लड़ाइयों की चर्चा इसलिए भी सुर्खियां बटोरती रही हैं कि इसमें खून बहता है, लाशें दिखाई देती हैं और चीख-पुकार सुनाई पड़ती है। लेकिन सांस्कृतिक हमले बेआवाज होते हैं। इसमें चीख-पुकार की बजाय मंत्र, अजान और चर्च के घंटे सुनाई पड़ते हैं। आप कब सांस्कृतिक/मानसिक गुलाम हो जाते हैं और एक पूरा समुदाय कैसे खत्म हो जाता है, पता ही नहीं चलता है। इसीलिए वे चाहते हैं कि श्रमशील समाज महज आर्थिक लड़ाइयों तक सिमटे रहे और उनका सांस्कृतिक साम्राज्य बना रहे। बेशक रोटी, कपड़ा और मकान बुनियादी जरूरत है। लेकिन हम ये आर्थिक लड़ाई क्यों जीत कर भी हारते रहे हैं। इस पर गंभीरता से विचार करने और मनुवादी ग्रंथों के साथ-साथ शिक्षा प्रणाली के भी पुनर्पाठ की आवश्यकता है। सत्ता के एक पहलु पर ही चोट जब तक होती रहेगी उसका दूसरा पहलु जो विचार का है और जो आर्थिक से ज्यादा घातक है, जिसे वह धर्म के जरिए टिकाये हुए हैं, पर भी उसी दमखम से चोट करने की जरूरत है। वरना हम और सत्ता दोनों एक साथ धर्म (विचार) की आरती उतारते रहेंगे और सदा उनका 'राज' बना रहेगा।

पौराणिक युग में देवियों यानी आदि शक्ति के उभार पर डॉ. अंबेडकर ने महत्वपूर्ण सवाल उठाया है। उनकी मान्यता है कि वैदिक युग में सारे देव युद्ध करते हैं जो पुरुष हैं। उनकी पत्नियां युद्ध में नहीं जाती। लेकिन पौराणिक काल में जब सारे देवों का राज स्थापित हो जाता है और वे ही शासक होते हैं तब अचानक से हम उनकी देवी पत्नियों को युद्ध में वीरांगना के रूप में पाते हैं। डॉ. आंबेडकर व्यंग्य करते हुए कहते हैं, 'ब्राह्मणों ने यह भी नहीं सोचा कि वह दुर्गा को ऐसी वीरांगना बनाकर जो अकेली सभी असुरों का मान मर्दन कर सके, वे अपने-अपने देवताओं को भयानक रूप से कायरता का जामा पहना रहे हैं। ऐसा लगता है कि वे पौराणिक देवता आत्मरक्षा तक नहीं कर सके और उन्हें अपनी पत्नियों से याचना करनी पड़ी कि वे आएं और उन्हें संरक्षण प्रदान करें। मार्कण्डेय पुराण में वर्णित एक घटना (महिषासुर वध) यह प्रकट करने के लिए पर्याप्त है कि ब्राह्मणों ने अपने देवताओं को कितना हिजड़ा बना दिया था। (डॉ. अम्बेडकर, हिंदू धर्म की रिडल, पृ. 75)

दुर्गा पूजा के बंगाली विस्तार का एक घृणित इतिहास भी है। अठारहवीं सदी के पहले बंगाल में भी दुर्गा पूजा की ऐसी कोई परंपरा नहीं थी जैसा कि आज हम पाते हैं। यह जानकर बहुत हिंदुओं को धक्का लगेगा कि दुर्गा पूजा का पहला आयोजन बंगाल में अंग्रेजी राज के विजयोत्सव के उपलक्ष्य में हुआ था। 1757 में। 23 जून 1757 को पलासी के युद्ध में बंगाल के नवाब को हराकर जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल पर अपना राज कायम कर लिया तो इसकी खुशी में

राजा नवकृष्णा देव, जो क्लाइव का मित्र था, ने शोभाबाजार स्थित अपने घर के प्रांगण में दुर्गा पूजा का आयोजन किया। आज भी 36 नबकृष्णा स्ट्रीट में होनेवाले पूजा को बंगाली लोग 'कंपनी पूजा' के नाम से ही जानते हैं। इसके बाद ही बंगाल के जमींदारों ने दुर्गा पूजा को अपने 'ठाकुर दालान' और अपनी-अपनी जमींदारियों में आयोजित करना शुरू किया। दुर्गा पूजा के इस आयोजन में धार्मिक विद्वेष स्पष्टतः मौजूद था और है, इसे भी नहीं भूलना चाहिए। ईस्ट इंडिया कंपनी ने पलासी के युद्ध में जिस नवाब को हराया था वह मुसलमान था-नवाब सिराजुद्दौला। ईस्ट इंडिया कंपनी से लड़नेवाला सिराजुद्दौला देशभक्त नहीं है भारतीय इतिहास में। क्योंकि वह मुस्लिम है। लेकिन जिन बंगाली राजाओं और जमींदारों ने ईस्ट इंडिया कंपनी की आराधना की वे बंगाली पुनर्जागरण के अग्रदूत माने गए। संहार का यह नस्लीय आयोजन हमें बताता है कि हजारों साल पहले असुरों को दुर्गा ने छल से मारा। बंगालियों ने 450 वर्ष पहले मुसलमानों के खिलाफ और ईस्ट इंडिया कंपनी की आराधना में फिर से दुर्गा को जीवित किया। और आजादी के बाद भारत सरकार व हिंदू समाज ने विकास एवं औद्योगिकीकरण की आड़ में आदिवासी इलाकों में दुर्गा पूजा का विस्तार करते हुए आदिवासियों का सांस्कृतिक संहार आज भी जारी रखा है।

आधुनिक विश्व और भारत को अब यह समझ लेना चाहिए कि किसी भी समाज-देश को इकहरी कहानियों से चलाना खतरनाक है। लोकतंत्र में सबकी कहानियों को सुनने का धैर्य होना चाहिए। हजारों वर्षों से एक नस्लीय दंभ, वर्चस्व की कहानी सुनायी जा रही है। सभी सुन रहे हैं और दूसरों को सुनने के लिए लगातार दबाव भी डाला जा रहा है। इतिहास, शिक्षा, साहित्य, फिल्म, मीडिया और धार्मिक-सांस्कृतिक आयोजनों के जरिए। यह किसी भी रूप में सामाजिक न्याय की आकांक्षा के अनुकूल नहीं है।

सांस्कृतिक उपनिवेशों का खात्मा प्राथमिक होना चाहिए। बुद्ध इसके सबसे बड़े अगुआ हैं। उन्होंने कोई आर्थिक आंदोलन नहीं चलाया। बुद्ध ने ब्राह्मणवादी धर्म-संस्कृति के आधारों पर सीधी चोट की। एक नई वैचारिकी वाली संस्कृति दी दुनिया को और पूरी दुनिया बौद्ध हो गई। हमारे देश का ब्राह्मणवाद और उसका सच्चा मित्र धनलोलुपवाद दोनों इसीलिए आर्थिक सवालों पर अंततः समझौते के लिए तैयार भी हो जाता है। पर संस्कृति के मामले में वह एक कदम पीछे हटने को भी तैयार नहीं होता है। धर्म, जाति, भाषा, स्त्री आदि सांस्कृतिक सवाल आप जैसे ही सवाल उठाये जाते हैं आर्थिक मोर्चों पर साथ साथ खड़े ब्राह्मणवादी वर्ग तुरंत तलवार निकालकर टूट पड़ते हैं। इसलिए आर्थिक लड़ाइयां जरूरी हैं पर निर्णायक संघर्ष सांस्कृतिक मोर्चे पर ही है।

राहुल सांकृत्यायन कहते हैं, 'मजहब तो है सिखाता आपस में बैर रखना। भाई को है सिखाता भाई का खून पीना। उत्पीड़ित अवाम की एकता मजहबों के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मजहबों की चिता पर होगी। मजहबों की बीमारी स्वाभाविक है। उसको मौत छोड़ कर इलाज नहीं। (राहुल सांकृत्यायन, 'तुम्हारी क्षय' से)

(कहानीकार व कवि अश्विनी कुमार पंकज पाक्षिक बहुभाषी आदिवासी अखबार 'जोहार दिसुम खबर' तथा रंगमंच प्रदर्शनी कलाओं की त्रैमासिक पत्रिका 'रंग वार्ता' के संपादक हैं। मो. 09234301671)

मुक्ति के महाआख्यान की वापसी

समर अनार्य

जलते हुए धैर्य के हथियार से लैस, प्रवेश करेंगे हम, शानदार शहरों में,
सूर्योदय के वक्त!- **आर्थर रिम्बौद**

कई बार लगता है कि सुर्खियों में रहना जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय (जेएनयू) की नियति भी है और नीयत भी। उससे भी बेहतर यह कि यह नियति भाग्यवादी नियति नहीं बल्कि आतताई और आखेटक व्यवस्था के हथियारों को चुनौती देने का साहस और उससे ऊपजे हमलों को झेल सकने की जिजीविषा की नियति है। यह नीयत 'कहीं कोई विकल्प नहीं है' के उद्घोषों के दौर में प्रतिरोध के साथ-साथ संभावनाओं के नए प्रतिदर्श खड़े करने की नीयत है।

बखैर, इस बार सुर्खियों का सबब बना प्रख्यात चिन्तक और राजनीतिक कार्यकर्ता प्रेमकुमार मणि का लिखा और 'फॉरवर्ड प्रेस' पत्रिका में छपा आमुख लेख, जहाँ उन्होंने मिथकों के ब्राह्मणवादी पाठ को चुनौती देते हुए 'देवी दुर्गा' और 'महिषासुर' की कथा का एक वैकल्पिक और 'प्रातिरोधिक' पुनर्पाठ किया था। दशहरे के पर्व की सांस्कृतिक-ऐतिहासिक विवेचना करते हुए मणि जी का मूल निष्कर्ष था कि यह आर्य संस्कृति के अनार्यों के साथ छल के सफल होने का विजयपर्व है। उनके मुताबिक यह पर्व अपने मूल चरित्र में आर्यों के द्वारा अनार्य (बहुजन) राजा महिषासुर को कपट से मारकर आर्य सत्ता स्थापित करने के उत्सव पर्व से ज्यादा कुछ भी नहीं है। इस लेख में बंगाल और कुछ अन्य स्थानों पर वेश्याओं द्वारा दुर्गा को अपने 'कुल' का बताये जाने, और दुर्गा प्रतिमा के निर्माण में उनके घर की मिट्टी की प्रतीकात्मक 'अनिवार्यता' का जिक्र भी था।

ब्राह्मणवादी परम्पराओं को गहरी चुनौती देते हुए इस लेख के अंतिम हिस्से को जेएनयू में दलित-बहुजन हकों की लड़ाई के लिए प्रतिबद्ध अकेला छात्र संगठन 'ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम' (एआइबीएसएफ) ने बतौर अपनी रिलीज जारी करते हुए जेएनयू की दीवारों पर चस्पा कर दिया। गौरतलब है कि जेएनयू के इतिहास में तथाकथित विवादित मुद्दों पर आने वाला यह कोई पहला पैम्फलेट या परचा नहीं था बल्कि जेएनयू की तारीख में इस किस्म के पर्चे प्रगतिशील और प्रतिगामी दोनों किस्म की राजनीतिक धाराओं से आते ही रहे हैं और इन पर्चों से पैदा हुई बहसों की तपिश ने जेएनयू की रवायतों को पैदा और मजबूत करने में अपनी बड़ी भूमिका निभाई है। यह और बात है कि दोनों तरफ के पर्चों में दृष्टि और स्वप्न का फर्क होना लाजमी है। मसलन जिक्र ही करें तो इसी जेएनयू में 'प्रोग्रेसिव स्टूडेंट्स युनियन' ने बाकायदा जुलूस निकाल कर विचारक मुद्राराक्षस और रमणिका गुप्ता की सदारत में 1992 में मनुस्मृति जलाई है तो प्रतिगामी खेमे की तरफ से 'काफिरों की

मौत पर अल्लाह मुस्कुराया' जैसे घटिया पर्चे भी आये हैं।

पर एक बात सामान्य तौर पर साफ रही है कि जेएनयू ने इन बहसों को बहसों की शक्ल में लिया है, नयी राजनीतिक दृष्टि के, समानता और बराबरी के सपनों के प्रस्थान बिंदु के बतौर देखा है और जहाँ तक संभव हुआ है हिंसा को रोका है। यूँ भी, बहसें विश्वविद्यालयों में नहीं तो फिर कहाँ होंगी?

पर जेएनयू के छात्रों द्वारा लगातार खारिज की जाती और पीछे हटती हुई अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद(एबीवीपी) ने इस पर्चे में उसके अपने स्वार्थों के काम आने वाली ध्रुवीकरण की सम्भावनाओं को तलाश लिया। पूरे पर्चे की सांस्कृतिक-राजनैतिक दृष्टि को छोड़ते हुए उन्होंने दुर्गा को वेश्याओं द्वारा अपने कुल का बताये जाने वाले हिस्से को चुना और इसे हिन्दू भावनाओं को आहत करने वाला बताते हुए एआइबीएसएफ के पर्चे फाड़ने शुरु किये। साथ ही उन्होंने शुरु किया वह साम्प्रदायिक विषवमन जिसके लिए वह जाने जाते हैं, बस अंतर सिर्फ इतना था कि इस बार दुश्मन 'अन्य' मतलब 'अल्पसंख्यक' नहीं बल्कि उनके दावों के मुताबिक उनके 'अपने' लोग थे, वह लोग थे जिन्हें उन्होंने और उनकी राजनैतिक धारा ने हमेशा अपने शहीदी दस्तों की तरह इस्तेमाल करने की कोशिश की है। इसीलिये उन्हें यह भी समझ आ रहा था कि धार्मिक आधारों पर न होने वाला यह ध्रुवीकरण उनके काम तब तक नहीं आयेगा जब तक वह इसको कोई और रंग न दे दें। हाँ, ब्राह्मणवादी वर्चस्व की विचारधारा के इन समर्थकों के लिए यह परचा और इसे जारी करने का 'एआइबीएसएफ' का 'दुस्साहस' उनकी 4999 साल की सत्ता को चुनौती देने वाला और इसी लिए नाकाबिलेबर्दाश्त भी लगा। यह कहना शायद गैरजरुरी ही होगा कि प्रतिगामी मूल्यों के इन पहरुओं के पास तर्कों का जवाब हिंसा के सिवा कभी कुछ रहा नहीं।

इस घटना के सामाजिक-राजनैतिक निहितार्थ कहीं ज्यादा बड़े हैं। यह निहितार्थ हैं मिथकों के, दावों के, परम्पराओं के पुनर्पाठ की कोशिशों के मजबूत होने के। इन कोशिशों से फिर इतिहास की गति निर्धारित होती है, उस इतिहास की जो हीगेल के मुताबिक 'स्वतंत्रता की चेतना के बढ़ते जाने का इतिहास' है। महिषासुर बनाम दुर्गा की इस लड़ाई ने और कुछ किया हो या न किया हो, कम-से-कम जेएनयू में न्याय के पक्ष में खड़े हर व्यक्ति को अपने इतिहास और अपनी परम्पराओं के अंदर के अन्याय से सीधी मुठभेड़ करने पर विवश किया है।

यह एक सन्देश है कि अब आप महिषासुर को रोक नहीं पायेंगे, क्योंकि लगभग दो सदी पहले आप ज्योतिबा फुले को बलि राजा को वापस लाने से कहाँ रोक पाए थे। अब तमाम महिषासुर लौटेंगे आपके शहरों में, और असीम धैर्य के साथ छीन लेंगें आपसे अपना हक। यह जरुर है कि वह आपके साथ वैसा सलूक नहीं करेंगे जैसा आपने उनके साथ किया था, क्योंकि वह न्याय के हक में खड़े हैं।

('फारवर्ड प्रेस' के नवंबर, 2011 अंक से साभार। प्रगतिशील आंदोलन में सक्रिय रहे समर अनार्य इन दिनों एक प्रमुख मानवाधिकार संगठन के हांगकांग स्थित कार्यालय में कार्यरत हैं)

महाप्रतापी राजा महिषासुर

धर्म ग्रंथों के पुनर्पाठ की परंपरा

दिलीप मंडल

महिषासुर-दुर्गा की कथा के बहुजन पाठ से ऊपजे विवाद के संदर्भ में प्रश्न उठता है कि क्या धार्मिक ग्रंथों की वैकल्पिक और अन्य व्याख्याओं की बात नहीं की जा सकती? इस प्रश्न के उत्तर के लिए हम अपने ही महापुरुषों की ओर देखना चाहेंगे। क्या ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट फोरम द्वारा पिछले दिनों जारी पोस्टर किसी नई परंपरा की शुरुआत है, जिसे विरोध झेलना पड़ रहा है। या फिर यह पुनर्पाठ की उस गौरवशाली परंपरा का हिस्सा है, जिसने देश में वैज्ञानिक चिंतन की आधारभूमि तैयार की? खुद ये धार्मिक ग्रंथ किसी एकांगी सत्य को सामने नहीं रखते और इनकी कई कथाएं एक दूसरे के समानांतर और एक दूसरे को काटती हुई चलती हैं। रामायण की सैकड़ों अलग अलग कथाएं हैं। इंद्र कई रूपों में चित्रित किए गए हैं। कृष्ण कहीं आर्यों के राजा इंद्र से युद्धरत हैं तो कहीं वर्ण-व्यवस्था की स्थापना करने के लिए गीता का उपदेश देते नजर आते हैं।

प्रश्न उठता है कि इन ग्रंथों से भी क्या किसी की भावनाओं को ठेस पहुंचती हैं? धार्मिक ग्रंथों की अलग-अलग व्याख्याओं के कारण नए धर्म बने हैं, धर्मों के अंदर अलग-अलग पंथ और संप्रदाय बने हैं। अलग-अलग पूजा पद्धतियों का आधार भी धर्म ग्रंथों की अलग-अलग व्याख्याएं हैं। इसे लेकर असहनशीलता हमेशा हिंसा को जन्म देती है। पुनर्पाठ या वैकल्पिक पाठ की प्रक्रिया को बाधित करना न सिर्फ लोकतंत्र के खिलाफ है बल्कि अकादमिक परिदृश्य में इसे ज्ञान-विरुद्ध भी माना जाएगा। अगर स्थापित मान्यताओं को चुनौती देना खतरनाक करार दिया जाएगा, तो कोई कोपरनिकस, कोई गैलिलियो, कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई फुले, कोई आंबेडकर नहीं बन पाएगा। जो जैसा है, उसे उसी रूप में रटना ज्ञान नहीं है। उसे चुनौती देकर ही ज्ञान की परंपरा आगे बढ़ी है। हम कबीर की उसी परंपरा में विश्वास करते हैं, जिसे पेरियार आगे बढ़ाते हैं।

पुनर्पाठ की परंपरा : ज्योतिबा फुले

आधुनिक भारत के सबसे प्रखर चिंतकों में एक ज्योतिबा फुले तमाम धार्मिक-सामाजिक क्रांतिकारियों के प्रेरणास्रोत हैं। डॉ. आंबेडकर से लेकर मोहनदास करमचंद गांधी तक परस्पर विरोधी विचार रखने वालों ने भी फुले की प्रेरणा और उनके महत्व को स्वीकार किया है। फुले साहित्य का मराठी से हिंदी में अनुवाद करने वाले डॉ. विमलकीर्ति कहते हैं कि - 'भारत में जब तक सामाजिक और धार्मिक शोषण रहेगा...तब तक उनको भी याद किया जाएगा, इसमें कोई दो राय नहीं है।'

फुले भारतीय समाज की बीमारी को समझने की कोशिश के क्रम में धर्मग्रंथों का लगातार विखंडन और व्याख्या करते हैं। उन्होंने अपने कालजयी कृति *'गुलामगीरी' में हिंदू मिथकों, पुराण कथाओं के अर्थों को खोलकर समझाया है। फुले लिखते हैं- 'ब्राह्मणों के जिन धर्मग्रंथों के आधार पर हम (शूद्रादि-अतिशूद्र यानी ओबीसी और दलित) लोग ब्राह्मण के गुलाम हैं और उनके कई ग्रंथ-शास्त्रों में हमारी गुलामी के समर्थन में लेख लिखे हुए मिलते हैं, उन सभी ग्रंथों का, धर्मशास्त्रों का और उसका जिन-जिन धर्मशास्त्रों से संबंध होगा, उन सभी धर्मग्रंथों का हम निषेध करते हैं।'*

'गुलामगीरी' की भूमिका में ही फुले इस बात की स्पष्ट व्याख्या करते हैं कि धर्मग्रंथों के झूठे प्रचार का पर्दाफाश क्यों जरुरी है। वे इस बात को समझते हैं कि भारत के शूद्रादि-अतिशूद्रों की गुलामी के मूल में इन ग्रंथों की बड़ी भूमिका है। इसलिए वे धर्मग्रंथों और मिथकों की खूब चीरफाड़ करते हैं और इस काम को वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ करते हैं। वे लिखते हैं- *'ब्राह्मण-पुरोहितों ने इन पर अपना वर्चस्व कायम करने के लिए, इन्हें सदा सदा के लिए गुलाम बनाए रखने के लिए, केवल अपने निजी स्वार्थों को ही दृष्टि में रखकर, एक से अधिक बनावटी ग्रंथों की रचना करके कामयाबी हासिल की। उन नकली ग्रंथों में उन्होंने यह दिखाने का पूरा प्रयास किया कि उन्हें जो विशेष अधिकार प्राप्त हैं, वे सब उन्हें ईश्वर ने दिए हैं। इस तरह का झूठा प्रचार उस समय अनपढ़ लोगों में किया गया और उस समय के शूद्रादि-अतिशूद्रों में मानसिक गुलामी के बीज बोए गए।'*

फुले आगे लिखते हैं- *'उन ग्रंथों में हर तरह से ब्राह्मणों-पुजारियों का महत्व बताया गया है। ब्राह्मणों-पुरोहितों का शूद्रादि-अतिशूद्रों के मन-मस्तिष्क पर हमेशा-हमेशा के लिए वर्चस्व बना रहे, इसलिए उन्हें ईश्वर से भी श्रेष्ठ समझा गया है।...जिस ईश्वर ने शूद्रादि-अतिशूद्रों को और अन्य लोगों को अपने द्वारा निर्मित इस सृष्टि की सभी वस्तुओं को समान रूप से उपभोग करने की पूरी आजादी दी है, उस ईश्वर के नाम पर ब्राह्मण-पंडा-पुरोहित एकदम झूठे ग्रंथों की रचना करके, उन ग्रंथों में सभी के (मानवी) हक को नकारते हुए स्वयं मालिक बन बैठे।... ब्राह्मण-पंडा-पुरोहित लोग अपना पेट पालने के लिए, अपने पाखंडी ग्रंथों द्वारा, जगह-जगह, बार-बार, अज्ञानी शूद्रों को उपदेश देते रहे, जिसकी वजह से उनके मन-मस्तिष्क में ब्राह्मणों के प्रति पूज्य भाव पैदा होता रहा।'*

फुले का पुनर्पाठ : निर्मम वैज्ञानिक दृष्टि

ज्योतिबा फुले जब पुराने मिथकों और ग्रंथों के बारे में लिखते हैं, तो एक बात निरंतरता में नजर आती है। वह है असंगत-अवैज्ञानिक बातों का तर्कों के आधार पर विखंडन। ऐसा करते हुए वे इस बात की परवाह नहीं करते कि इसकी वजह से किसी की भावनाओं को चोट पहुंचेगी। फुले अपने लेखन में सिर्फ पिछड़ों और दलितों को संबोधित नहीं करते थे, बल्कि वे समाज के प्रभु वर्ग से भी संवाद कर रहे थे। इसके बावजूद वे इन धर्मग्रंथों को बिना किसी लाग-लपेट के- 'ब्राह्मणों के नकली-पाखंडी धर्म (ग्रंथ)' कहते हैं।

फुले रचित 'गुलामगीरी' के कुछ अंशों को देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि वे प्राचीन मिथकों और ग्रंथों का कितनी निर्ममता के साथ खंडन करते हैं और उनका मजाक उड़ाते हैं-

1. अब ब्राह्मण को पैदा करने वाले ब्रह्मा का जो मुंह है, वह हर माह मासिक धर्म (माहवारी) आने पर तीन-चार दिन के लिए अपवित्र (बहिष्कृत) होता था या लिंगायत नारियों की तरह भस्म लगाकर पवित्र (शुद्ध) होकर घर के काम-धंधे में लग जाता था। क्या इसके बारे में मनु ने कुछ लिखा है या नहीं?... (धोंडीराव) आज के ब्राह्मण लिंगायतों से इसलिए घृणा करते हैं, क्योंकि वे इसमें छुआ छूत नहीं मानते।

2. इससे तुम सोच ही सकते हो कि ब्राह्मण का मुंह, बाहें, जांघें और पांव - इन चार अंगों की योनि, माहवारी (रजस्वला) के कारण, उसको कुल मिलाकर सोलह दिनों के लिए अशुद्ध होकर दूर-दूर रहना पड़ता होगा। फिर सवाल उठता है कि उसके घर का काम-धंधा कौन करता होगा?

3. वह गर्भ ब्रह्मा के मुंह में जिस दिन से ठहरा, उस दिन से लेकर नौ महीने तक किस स्थान पर रहकर बढ़ता रहा...फिर जब यह ब्राह्मण पैदा हुआ, उस नवजात शिशु को ब्रह्मा ने अपने स्तन से दूध पिलाया या बाहर का दूध पिलाकर छोटे से बड़ा किया।

फुले ने मिथकों के पुनर्पाठ के माध्यम से वर्ण-व्यवस्था के मूलाधार ऋग्वेद के पुरुष सूक्त को अवैज्ञानिक और कोरा गप करार दिया है। ऐसा करते समय उनका लक्ष्य सिर्फ यह स्थापित करना है कि हर मनुष्य उत्पत्ति की दृष्टि से समान है। कोई मनुष्य मुंह से पैदा नहीं हो सकता। क्या फुले ऐसा करते हुए किसी की भावनाओं को ठेस पहुंचा रहे थे? हां। मुमकिन है कि इस लेखन से किसी को ठेस पहुंच रही हो, लेकिन इस वजह से सत्य कहने के ऐतिहासिक कार्यभार को फुले ने मुल्तवी नहीं किया। क्योंकि जैसे ही कोई यह मान लेता है कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुंह से पैदा हुए हैं, इसके साथ ही यह भी मान्यता होती है कि इस देश के बहुजन पैर से पैदा हुए हैं। यह बात ऊंच-नीच को धार्मिक मान्यताओं के साथ स्थापित करती है। इसलिए इसका खंडन जरुरी है, बेशक इससे किसी की धार्मिक भावनाओं को ठेस लगती हो।

इसी तरह फुले ब्रह्मा और सरस्वती की कथा का भी खंडन करते हैं। वे लिखते हैं-

1. धोंढीराव- उसके (ब्रह्मा के) शेष तीन सिर इस झमेले से दूर थे या नहीं? आपकी राय इस बारे में क्या है? उस रंडीबाज (यही शब्द हैं) को इस तरह मां बनने की इच्छा क्यों पैदा हुई होगी?

ज्योतिराव- वह रंडीबाज इतना गिरा हुआ आदमी था कि उसने सरस्वती नाम की अपनी कन्या से ही संभोग (व्यभिचार) किया था। इसलिए उसका उपनाम 'बेटीचो...' (यही शब्द हैं) हो गया है। इसी बुरे कर्म के कारण कोई व्यक्ति उसका मान सम्मान (पूजा) नहीं कर रहा है।

फुले दरअसल पुरानी परंपराओं का खंडन करते हुए लगातार वर्णव्यवस्था के धार्मिक आधार पर चोट करते हैं। 'गुलामगीरी' में वे एक स्थान पर लिखते हैं - ब्रह्मा के चार मुंह होते तो इसी हिसाब से उसके आठ स्तन, चार नाभियां, चार योनियां और चार मलद्वार होने चाहिए (धोंडीराव)। (वही, पेज 32)

वामन और बलीराजा की कथा की मीमांसा करते हुए वे लिखते हैं - जब उस गलीज गेंडे (यही मूल शब्द हैं) ने अपने दो कदमों से सारी धरती और आकाश को घेर लिया, तब उसके पहले ही कदम के नीचे, कई गांव, गांव के लोग दब गए होंगे, और उन्होंने अपनी निर्दोष जानें गंवाईं होंगी या नहीं? दूसरी बात यह कि जब उस गलीज गेंडे ने.... (आदि आदि)..फिर जब वह गलीज गेंडा मरा होगा, तब उसकी उस विशाल लाश को श्मशान ले जाने के लिए कंधा देने वाले चार लोग कहां से आए होंगे।...यदि उस तरह की विशालकाय लाश को जलाने के लिए पर्याप्त लकड़ियां नहीं मिली होंगी, यह कहा जाए, तब उसको वहीं के कुत्ते-सियारों ने नोंच नोंचकर खा लिया होगा।

यहां पर फुले धर्म ग्रंथों के बारे में एक महत्वपूर्ण टिप्पणी करते हैं : इसका मतलब स्पष्ट है कि उपाध्यायों ने बाद में समय देखकर सभी पुराण-कथाओं से इस तरह के ग्रंथों की रचना की होगी, यही सिद्ध होता है। (वही)

फुले को हम उस परंपरा की शुरुआत करने वाला मान सकते हैं, जिस परंपरा में आगे चलकर प्रेमकुमार मणि तक आते हैं, जिनके एक लेख से बनाए गए पोस्टर को लेकर पोंगापंथियों ने इतना हंगामा मचा रखा है।

दुर्गा और महिषासुर की कथा की बात करें तो संविधान निर्माता डॉ आंबेडकर इस कथा को ''not merely a riddle, but an absurdity'' करार देते हैं। वे लिखते हैं कि-It requires explanation why this doctrine of Sakti was invented.

कुल मिलाकर जेएनयू में 'ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम' द्वारा चिपकाया गया पोस्टर कोई अनूठी बात नहीं कहता। यह फुले-आबंडेकर-पेरियार की परंपरा में कही गई बात ही है। ऐसी सैकड़ों किताबें जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी में हैं, जिनमें धार्मिक ग्रंथों का पुनर्पाठ है। इसमें साहित्य से लेकर तमाम तरह का लेखन है। इस परंपरा की शुरुआत आप कबीर से मान सकते हैं जो आगे चलकर राजेंद्र यादव और प्रेम कुमार मणि तक पहुंचती है।

(इंडिया टुडे (हिंदी) के प्रबंध संपादक रहे वरिष्ठ पत्रकार दिलीप मंडल की 'मीडिया का अंडरवर्ल्ड', 'चौथा खंभा प्राइवेट लिमिटेड' समेत अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं। मो. : 09899128000)

महिषासुर और दुर्गा की उपकथाएं

संजीव चंदन

मिथक इतिहास नहीं होते लेकिन वे अतीत हो चुके समाज और उसकी संस्कृति का इतिहास जरूर कहते हैं। देवियों के मिथक पूरे देश में अलग-अलग रूपों में अपना प्रभाव रखते हैं और वर्षों से लगभग सर्वमान्य रूप से स्वीकार्य रहे हैं। माना जाता है कि ये मिथक देवियों के मातृत्व की प्रतिष्ठा करते हैं व उनकी सृजन शक्ति की आराधना करते हैं। कामरूप कामख्या में स्त्री की योनि की पूजा होती है, जिसके लिए ब्राहमण कर्मकांडियों ने ५ दिनों की मासिक 'रजस्वला' अवधि भी तय कर रखी है। बिहार के गया जिले में मंगलागौरी में देवी के स्तन की पूजा होती है। लेकिन क्या सचमुच ये मिथक सिर्फ सृजन शक्ति की अराधना तक सीमित हैं या इनके पीछे सामाजिक संघर्ष की एक लंबी गाथा भी छुपी है?

वस्तुतः कथित आधुनिक सोच के आगमन के बावजूद, देवियों के मिथक पर लिखना आज भी काफी जोखिम भरा है, खासकर जिस पृष्ठभूमि में यहां लिखने का प्रसंग है। हालांकि महात्मा फुले, डा आम्बेडकर, पेरियार आदि हमारे प्रेरणा नायकों ने इन मिथकों पर करारा प्रहार किया है, लेकिन स्थितियाँ आज भी बहुत बदली नहीं हैं।

दरअसल, हिंदू धर्म में देवियों के अनेक मिथकीय अस्तित्व हैं, जिनमें दुर्गा एक हैं। दुर्गा की कथा 250 ईस्वी से लेकर 500 ईस्वी के बीच लिखे गए मार्कंडेय पुराण में है, जिसका 'दुर्गा सप्तशती' के रूप में ब्राह्मणों द्वारा पाठ किया जाता है। 'दुर्गा सप्तशती के अनुसार, दुर्गा के अलग-अलग नाम और रूप हैं। वह 'जगद्जननी' है लेकिन उसकी उत्पत्ति देवताओं (पुरुषों) के तेज से हुई है और उससे से ही वह इतनी शक्तिशाली भी बनी कि देवों की पराजय का बदला ले सके।

दुर्गा अनेक असुरों की हत्या करती है, जिनमें महिषासुर, शुम्भ, निशुम्भ आदि शामिल हैं। आर्यों और मूलनिवासियों के आपसी संघर्ष और मूलनिवासियों के लिए आर्यों द्वारा किये जाने वाले संबोधनों के इतिहास पर काफी कुछ लिखा गया है। देश के अलग-अलग भागों में असुरों की पूजा होती है। इस प्रकार दुर्गा का मिथक और उसके पराशक्ति संपन्न युद्धों की कथा आर्यों और मूलनिवासियों के बीच संघर्ष की कथा है, जिसे ब्राह्मण चारणों ने अतिवादी बना दिया।

महाराष्ट्र के बहुजन परम्परा के विद्वान तथा मराठा सेवा संघ के सक्रिय आंदोलनकारी आ.ह. सालुंखे और नीरज सालुंखे दुर्गा, उर्वशी, अम्ब आदि को बहुजन परम्परा से जोड़ते हुए उन्हें 'गणनायिका' बताते हैं। यदि यह सिद्धांत सही है तो फिर इन गणनायिकाओं का युद्ध या तो कबीलाई युद्ध था या फिर आर्यों के उकसावे या नियंत्रण में हुआ था। इसी देश

से होने के कारण ये 'गण' एक-दूसरे की कौशल-कमियों से वाकिफ होंगे, जो इन्हें एक दूसरे को हराने में सहायक रहा होगा और इसी कारण से आर्यों ने अपने विस्तार के लिए इनका इस्तेमाल किया होगा और इनका महिमामंडन हुआ होगा।

दुर्गा सप्तशती में वर्णन है कि युद्ध के मैदान में दुर्गा 'सुरापान' करने लगती है और उसके बाद वह महिषासुर का वध करती है। इस कथा की 'बिटवीन द लाइंस' व्याख्या करने वाले लोग महिषासुर की हत्या धोखे से की गई मानते हैं, यानी स्त्री होने का फायदा लेकर दुर्गा ने उनकी हत्या कर दी। बाद के दिनों में असुर शुम्भ और निशुम्भ दुर्गा को अपने पास आने का प्रस्ताव भी देते हैं, यहाँ भी कथा के भीतर उपकथा की संभावना है। इन उपकथाओं को आधार दे जाता है दुर्गा का अविवाहित होना यानी किसी देवता के द्वारा उसे पत्नी के रूप में न स्वीकारा जाना, यानी वह उर्वशी, मेनका की तरह देवों की अप्सराओं में गिनी जा सकती है।

कथा में प्रयुक्त शब्दावली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन भी कुछ अतिरिक्त तथ्यों को सामने लाता है। महिषासुर की हत्या को 'महिषासुर मर्दन' कहा जाता है। इस भाषा के जरिये व्याख्या की दो संभावनाएं बनती हैं, एक तो यह कि दुर्गा मर्दाना ताकत से लैस थी, यानी देवताओं के तेज से, (दुर्गा सप्तशती के अनुसार) इसलिए उसने मर्दन किया। दूसरी व्याख्या के लिए मर्दन के प्रचलित अर्थ शामिल किये जा सकते हैं। यह सेक्स के लिए इस्तेमाल होने वाला शब्द है, जो 'मान-मर्दन' तक विस्तार पाता है। इस शब्दावली के आधार पर भी युद्ध के मैदान में सुरापान और उसके बाद महिषासुर की हत्या के भीतर उपकथाएं तलाशी जा सकती हैं।

जाहिर है, दुर्गा व अन्य देवियों की कथा के पीछे की मूल भावना सिर्फ सृजन शक्ति की अराधना नहीं है, बल्कि इसके कहीं अधिक गंभीर निहितार्थ हैं, जिन्हें ब्राह्मणग्रंथों का सम्यक पाठ कर समझा जा सकता है।

(फारवर्ड प्रेस के अक्टूबर, 2014 अंक से साभार। कहानीकार व पत्रकार संजीव चंदन 'स्त्रीकाल' पत्रिका के संपादक हैं। मो. 9973860764)

इतिहास को यहां से देखिए

अभिषेक यादव

हाल में ही मेरी एक प्रोफेसर से बात हुई। वे तमिलनाडु के रहने वाले हैं। बातचीत नवरात्र के संदर्भ में होने लगी। उन्होंने एक हैरतअंगेज बात बताई कि तमिलनाडु में रावण और दुर्योधन के कई मंदिर हैं। साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि पूरे दक्षिण भारत में राम का मंदिर बहुत मुश्किल से मिलेगा। मैं सोचने लगा कि इतनी महत्वपूर्ण बात आखिर प्रकाश में क्यों नहीं आती? कारण स्पष्ट है-पूरा प्रचार तंत्र जिनके कब्जे में वे नहीं चाहते कि ऐसा कोई मिथक या तथ्य प्रकाश में आए जिससे उनकी सत्ता को चुनौती मिले। वे कौन हैं-स्पष्ट है कि वे ब्राम्हणवादी हैं। महिषासुर पर कुछ कहने-लिखने से पहले मैं एक बात और कहना चाहता हूं। अभी बीस वर्ष भी नहीं बीते हैं बाथे-बथानी के नरसंहार को जिसमें सैकड़ों दलितों (बच्चों, गर्भवती महिलाओं) की हत्या कर दी गई। यह हत्यारे 'रणवीरी' थे। एक उच्च जाति की निजी सेना के लोग। ये हत्यारे रणवीरी गर्भवती महिलाओं की हत्या करते समय चिल्लाते थे कि इनकी हत्या करो क्योंकि ये नक्सली पैदा करती हैं। मैं सोचता रहता था कि आखिर वह कौन सी संस्कृति है, जो इन रणवीरों को इतनी क्रूर हिंसा सिखाती है। दरअसल, 'रणवीरी' हिंसा की जड़ ऋग्वेद में है। ये लोग एक बेहद हिंसक और घृणित संस्कृति के वारिस हैं। और सिर्फ हत्याएं ही नहीं की गई बल्कि देवासुर संग्राम का नाम देकर इन हत्याओं को न्यायोचित भी ठहराया गया। इससे ज्यादा शर्मनाक बात और क्या हो सकती है। आज जब कंपनियां 'सेज' लेकर जंगलों में जा रही हैं तो आदिवासी उनका विरोध कर रहे हैं, क्योंकि इससे आदिवासियों की जल-जंगल-जमीन छीन रही है। फर्ज कीजिए कि जनेऊ पहने अपने सैकड़ों दास-दासियों के साथ एक ऋषि जंगल में (अरण्य) यज्ञ करने आया है। ब्राम्हणवादियों! आपको 'यज्ञशाला' और 'सेज' में फर्क लग सकता है-हमें नहीं लगता। तब मूलनिवासियों को असुर कह कर मारा गया और अब माओवादी कहकर मारा जा रहा है।

एक तीसरी बात। यह आर्य परंपरा ही है कि जिस भी व्यक्ति से उन्हें खतरा लगता है और वे उससे जीत नहीं सकते वे वहां महिलाओं को सामने कर देते हैं। आप एक मिनट के लिए दुर्गा-महिषासुर प्रकरण को छोड़ दीजिए। आप मेनका-विश्वामित्र को याद कीजिए और ऐसे ही सैकड़ों कथाएं। किसी भी ताकतवर विरोधी से डरने वाले धूर्तों की सभ्यता रही है आर्यों की सभ्यता। भले ही वह विरोधी उनके अपने समुदाय का ही क्यों न हो। अप्सराओं, देवियों का 'तपभंग' करने के लिए 'उपयोग' करने वाली सभ्यता किस कदर पितृसत्तात्मक है, यह भी स्पष्ट हो जाता है।

अब अगर आप महिषासुर-दुर्गा प्रकरण पर विचार करेंगे तो पाएंगे कि यह एक देवासुर संग्राम ही है और संयोग वह देखिए कि ब्राम्हणवादी भी इसे देवासुर संग्राम ही मानते हैं। जो बाहर से आए आर्यों और यहां के मूलनिवासियों के बीच हुआ। संसाधनों पर अपने नियंत्रण को बचाने के खातिर महिषासुर (जो कि यहां के मूल निवासियों के नेता थे) ने आर्यों से भीषण संघर्ष किया। आर्य दूसरे की संपत्ति हड़पने के लिए लड़ रहे थे और महिषासुर अपने लोगों की संपत्ति की रक्षा के लिए। बार-बार पराजित हो रहे आर्यों ने दुर्गा का उपयोग किया। महिषासुर मारे गए। इतिहास लिखना आर्यों के हाथ में था सो धूर्तता करने वाले देवी और देवता कहे गए, और अपनी जनता की रक्षा करने वाले असुर राक्षस और न जाने क्या-क्या।

ब्राम्हणवादियों, सुनो! महिषासुर हमारे देवता नहीं हैं। असुर और देवता बनाने की संस्कृति तुम्हारी है। महिषासुर हमारे नायक हैं। पराजित योद्धा लेकिन पलायित नहीं। उनके वंशज आज भी तुमसे लड़ रहे हैं। तुम्हारा पलायन और धूर्तता का इतिहास है और हमारा संघर्ष करने का। वक्त आ स्त्रया है कि अब इतिहास और मिथकों को यहां से देखा जाय।

(भाकपा (माले) के छात्र संगठन आइसा के नेता व जेएनयू छात्रसंघ के उपाध्यक्ष रहे डॉ- अभिषेक यादव इन दिनों राजीव गांधी विश्वविद्यालय, अरूणाचल प्रदेश में प्राध्यापक हैं। संपर्कः 09436270032)

महिषासुर दिवस की जन्म कथा

अरविंद कुमार

21 वीं सदी में महिषासुर शहादत दिवस मानना कहाँ तक तार्किक है? मिथकों की पुनर्व्याख्या से आप लोग क्या साबित करना चाह रहे हैं? भारतीय समाज पर इस कृत्य का क्या प्रभाव पड़ेगा? देखिये अगर आप लोग महिषासुर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं तो दुर्गा के अस्तित्व को भी स्वीकार करना पड़ेगा, फिर रामायण, महाभारत व पुराणों की मिथकीय कथाओं को भी सही मानना पड़ेगा। आपका यह कदम दरअसल ब्राह्मणवाद की जड़ों को और मजबूत करेगा। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) के मार्क्सवादी,, 2011 में आल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट फोरम (एआइबीएसएफ) के राष्ट्रीय अध्यक्ष जितेंद्र यादव व उनके साथियों (जिनमें मै खुद भी शामिल था) से कुछ ऐसे ही जटिल सवाल पूछते थे।

विदित हो कि 2011 में उक्त संगठन ने जेएनयू में पहली बार महिषासुर शहादत दिवस मनाने की घोषणा की थी। जेएनयू के कुछ 'प्रगतिशील' प्रोफेसरों की प्रतिक्रिया थी कि आप लोग गंदगी में हाथ डाल कर मथने जा रहे हैं। इससे आपको कुछ हासिल नहीं होगा बल्कि आगे और गंदगी ही हाथ लगेगी। उस वक्त इन सवालों का जवाब देना या खोजना आसान नहीं था क्योंकि तब महिषासुर शहादत दिवस के भविष्य के बारे में किसी को कुछ मालूम नहीं था।

जेएनयू में महिषासुर शहादत दिवस मनाने की जरूरत क्यों महसूस हुई इसके पीछे घटनाओं का एक सिलसिला है। दरअसल यह बात उन दिनों की है जब केंद्र सरकार ने अन्य पिछड़ी जतियों को उच्च शिक्षण संस्थानों में 27 फीसदी आरक्षण दिया तो आरक्षण विरोधी छात्रों ने यूथ फॉर इक्वलिटी नामक संगठन बना कर उसका विरोध करना शुरू किया। आरक्षण के समर्थन में पिछड़े वर्ग के छात्रों ने भी अपने आपको एआइबीएसएफ नामक संगठन के बैनर तले एकठ्ठा करना शुरू किया। देश की राजधानी स्थित जेएनयू में दोनों ही संगठनों ने छात्रों को जागरूक करने हेतु अपनी-अपनी गतिविधियां बढ़ानी शुरू की। इसी दौरान एआइबीएसएफ ने पाया कि पिछड़े वर्ग के अधिकतर छात्र दुर्गा पूजा के दौरान आरक्षण विरोधी छात्रों के साथ मिलकर पूजा-पाठ में व्यस्त रहते थे। विदित हो कि मार्क्सवाद के बौद्धिक गढ़ जेएनयू में उच्च शिक्षित मार्क्सवादी लड़के-लड़कियां दुर्गा पूजा में माथे पर तिलक-भभूत लगाकर बड़े ही शौक से शंख बजाते हैं। इतना ही नहीं साल भर आधुनिक कपड़े पहन कर पितृसत्ता को कोसने वाली नारीवादी लड़कियां इन दिनों में पारंपरिक भारतीय परिधानों में उपवास करती नजर आती हैं। वैसे तो अमूमन देश के कोने-कोने में ऐसा ही होता है परंतु जेएनयू में भी यही सब होना एक अजूबा है क्योंकि यहाँ हर बात

तर्क-वितर्क से ही तय होती है सिवाय इन त्योहारों के। संस्कृति कैसे आधुनिकता, ज्ञान-विज्ञान व तर्क-वितर्क को खा जाती है, जेएनयू इसका जीता जागता उदाहरण है।

उन दिनों नवगठित एआइबीएसएफ ने बहुजन छात्रों में जागरूकता फैलाने एवं एक स्वस्थ बहस की शुरुआत करने हेतु विश्वविद्यालय परिसर में फारवर्ड प्रेस में प्रकाशित बहुजन विचारक प्रेम कुमार मणि का 'किसकी पूजा कर रहे है बहुजन' नामक लेख दीवारों पर लगाया। उक्त लेख में महिषासुर को यहाँ का अनार्य पशुपालक राजा बताया गया था। विश्वविद्यालय में लेख पर जबर्दस्त प्रतिक्रिया हुई और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के छात्र संगठन अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के पदाधिकारियों ने पूरे विश्वविद्यालय में पर्चे को फाड़ा ही नहीं बल्कि जितेंद्र यादव व उनके साथियों के साथ मारपीट करके विश्वविद्यालय प्रशासन में उलटे अपनी भावनाएं आहत होने की शिकायत दर्ज कराई। विश्वविद्यालय प्रशासन ने शिकायत को गंभीरता से लिया और जितेंद्र यादव को एक समुदाय की धार्मिक भावनाओं को आहत करने हेतु 'कारण बताओ' नोटिस जारी किया।

जितेंद्र यादव ने उच्चतम न्यायालय के वकील नितिन मेश्राम की मदद से विश्वविद्यालय प्रशासन की नोटिस का करारा जवाब दिया। जितेंद्र यादव ने न केवल माफी मांगने से साफ इंकार किया बल्कि विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में मौजूद 'बहुजन साहित्य' को प्रशासन के समक्ष साक्ष्य के रूप में उपलब्ध कराया जिसमें महात्मा ज्योतिराव फुले से लेकर बाबासाहेब डा. अंबेडकर के लेखों में हिन्दू देवी देवताओं पर किया गया कटाक्ष शामिल था। जेएनयू प्रशासन ने अपनी नोटिस के लिए जितेंद्र यादव से सार्वजनिक तौर पर माफी मांगी जो कि विश्वविद्यालय के इतिहास में पहली घटना थी। उक्त घटनाक्रम महीनों तक देश की राष्ट्रीय मीडिया की सुर्खियों में बना रहा था। उसी दौरान जितेंद्र यादव के नेतृत्व में बहुजन छात्रों ने जेएनयू में ही महिषासुर शहादत दिवस मनाने की घोषणा कर दी जो कि शायद देश की पहली घटना थी। भारत के कोने-कोने से बहुजन विचारकों व कार्यकर्ताओं ने कार्यक्रम पर अपनी प्रतिक्रियाएं दी थी।

खैर, इस वर्ष महिषासुर शहादत दिवस चौथा वसंत देखने जा रहा है। चूंकि महिषासुर शहादत दिवस की कमान अब सीधे जनता के हाथ में जा चुकी है इसलिए तीन साल पहले उठाए गए सवालों का जवाब देना अब आसान हो चुका है। दरअसल भारतीय समाज में जाति व्यवस्था के अंतर्गत चीजों का बटवारा उन सिक्कों के रूप में हुआ है जिसमें एक सतह है ही नहीं। सभी को केवल अच्छी सतह के बारे में ही पता है। दूसरी सतह या तो लोग देखना नहीं चाहते या देखने के लिए समय नहीं है। लोग झूठी शान में हैं कि उनके पास अपना सिक्का है। इसीलिए आज तक इस झूठ और अन्याय के खिलाफ भारतीय समाज में बगावत नहीं हुई। आम लोगों को सिर्फ आधा व एक तरफा ज्ञान है। कहानी का दूसरा पहलू उन्हें बताए जाने की सख्त जरूरत है, जिससे उन्हें सोचने पर मजबूर होना पड़े। बाबासाहेब अंबेडकर कहते हैं कि 'गुलामों को गुलामी का अहसास भर करा दो वो

अपनी जंजीरें खुद तोड़ डालेंगे।' महिषासुर शहादत दिवस, का मकसद जेएनयू के दुर्गा पूजा पंडाल में बैठे बहुजन छात्रों को उनकी गुलामी का अहसास कराना है। इसे त्योहार की शक्ल देने का मकसद लोगों को दूसरे पहलुओं पर सोचने पर मजबूर करना है।

हिन्दूवादी वर्ण व्यवस्था से विश्वास तोड़ने के लिए लोगों के मन में शंका पैदा करना जरूरी है कि वो जिसे सत्य मान रहे हैं दरअसल वो गलत भी हो सकता है। इसके लिए सबसे पहले वर्तमान विश्वास के विपरीत तर्क गढ़े जाने की जरूरत होती है जिससे एक स्वस्थ बहस शुरू हो सके कि आखिर सत्य क्या है? वास्तविक सत्य पर पहुंचने से पहले इस बात की भी जरूरत होती है कि लोगों का उनकी मान्यताओं पर से विश्वास को हिलाया जाए। अगर दुर्गा अच्छाई का प्रतीक है और महिषासुर बुराई का तो इस उल्टी स्थिति को सीधा क्यों नहीं किया जा सकता। मतलब दुर्गा बुराई का प्रतीक हो और महिषासुर अच्छाई का। इसके बाद देखा जाए कि समाज के किस वर्ग का कितना हित प्रभावित होता है। यह एक मार्क्सवादी तरीका है। एआइबीएसएफ ने यही तरीका अपनाया था। परंतु दुर्भाग्य से भारत के मार्क्सवादी इसे भारत की संस्कृति को समझने के लिए इस्तेमाल नहीं करते।

(यूनाइटेड दलित स्टूडेंट फोरम की केंद्रीय समिति के सदस्य अरविंद कुमार समसामयिक विषयों पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखते रहे हैं। मो. : 09873877896)

महिषासुर : पुनर्पाठ की जरुरत

राजकुमार राकेश

पुस्तिका 'किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन?' मेरे सामने है। तकरीबन चालीस पृष्ठों की इस सामग्री को मैने दो-ढाई घंटे के अंतराल में पढ़ लिया। मगर इस छोटे से अंतराल ने मेरे भीतर जमे अनगिनत टीलों को दरका दिया है। फारवर्ड प्रेस के संपादक प्रमोद रंजन द्वारा संपादित इस पुस्तिका को 17 अक्टूबर, 2013 को दिल्ली के ख्यात जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी में 'ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंटस फोरम' द्वारा आयोजित 'महिषासुर शहादत दिवस' पर जारी किया गया था। पुस्तिका में प्रेमकुमार मणि, अश्विनी कुमार पंकज, इंडिया टुडे (हिंदी) के प्रबंध संपादक दिलीप मंडल समेत 7 प्रमुख लेखकों, पत्रकारों व शोधार्थियों के लेख हैं, जिनमें से अधिकांश फारवर्ड प्रेस पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। दरअसल, इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों के माध्यम से ही यह विमर्श हिंदी पट्टी में चर्चा में आया था।

जिस दिन मैंने इस पुस्तिका को पढ़ा, उसी दिन शाम को टीवी के एक चैनल पर दिल दहला देने वाला एक दृश्य था। उत्तरी कोरिया के तानाशाह किम जोंग ऊन ने अपने फूफा और उसके छह साथियों को तीन दिन से भूखे रखे गए एक सौ बीस शिकारी कुत्तों को परोस दिया। तकरीबन एक घंटे में इन कुत्तों ने उन जिंदा मानवीय शरीरों को फाड़कर चट कर डाला। इस विशाल पिंजरे के चारों ओर की बालकनियों में खड़े दर्शक इस दौरान तालियां बजाते रहे। उनमें खुद किम जोंग ऊन भी मौजूद था। ऐसा ही एक दृश्य सद्दाम हुसैन को अमेरिका द्वारा फांसी दिए जाने का था। इन विजेताओं ने मारे जाने वालों को बर्बर, क्रूर, विद्रोही, अमानवीय घोषित किया था। यह हारे हुए लोगों के प्रति विजेता न्याय है।

यही कुछ महिषासुर के साथ किया गया था। सदियों से उसकी ऐसी अमानवीय छवियां गढी गईं हैं, जो विश्वासघात से की गई उस शासक की मौत को जायज ठहराने का काम करती रही हैं। हमलावर आर्यों, जो इंद्र के नेतृत्व में बंग प्रदेश को कब्जाने के लिए यहां के मूल निवासी अनार्यों से बार-बार हारते चले गए थे, उन्होंने अंततः विष्णु के हस्तक्षेप से दुर्गा को भेजकर महिषासुर को मरवा डाला था। आर्यों (सुरापान करने वाले और पालतू पशुओं को अपने यज्ञों के नाम पर वध करके उनके मांस को खा जाने वाले सुरों) ने खुद को देवता घोषित कर दिया और बंग प्रदेश के मूल निवासियों को असुर। महिषासुर इन्हीं असुरों (अनार्यों) का बलशाली और न्यायप्रिय राजा था। ये आर्य इन अनार्यों के जंगल, जमीन की भू-संपदा और वनस्पति को लूट लिए जाने और अनार्यों के दुधारु जानवरों को हवन में आहुत कर देने के लिए कुख्यात थे। महिषासुर और उनकी अनार्य प्रजा ने आर्यों

के इन कुकर्मों को रोकने के लिए इंद्र की सेना को इतनी बार परास्त कर डाला कि उसकी रीढ़ ही ध्वस्त हो गई। ऐसे में इंद्र ने विष्णु से हस्तक्षेप करवाकर एक रुपसी दुर्गा को महिषासुर को मार डालने का जिम्मा सौंपा।

इन विजेताओं ने दुर्गा के लिए पशुबलि का प्रावधान रखा है। तर्क दिया जाता है कि यह पशुबलि दुर्गा के वाहन शेर के लिए है। बाकी वे खुद को शाकाहारी घोषित करते हैं ताकि असुरों को मांसाहारी सिद्ध करने का तर्क उनके पास मौजूद रहे।

बहुत हद तक प्रस्तुत पुस्तिका में महिषासुर दुर्गा के इसी पुनर्पाठ की प्रस्तुति है, मगर इस पर अधिकाधिक व्यापक शोध की जरुरत है, जिसके चलते बहुत से छिपे सत्य उद्घाटित होने की संभावना बनती है, जिन्हें नकारा जाना आज के आर्यपुत्रों के लिए मुमकिन नहीं रहेगा।

फिलहाल मैं धर्मग्रंथों की बिक्री की एक दुकान से 'दुर्गा सप्तशती' नामक पुस्तक लाया हूं। यह रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन) हरिद्वार से प्रकाशित है। इस में मौजूद पाठ हालांकि सुरों के पक्ष में लिखा गया है, मगर यह महिषासुर वध के छल छद्म और सुरों के चरित्र पर बहुत कुछ कह जाता है - ''प्राचीन काल के देवी-देवता तथा दैत्यों में पूरे सौ बरस युद्ध होता रहा। उस समय दैत्यों का स्वामी महिषासुर और देवताओं का राजा इंद्र था। उस संग्राम में देवताओं की सेना दैत्यों से हार गई। तब सभी देवताओं को जीतकर महिषासुर इंद्र बन बैठा। हार कर सभी देवता ब्रह्माजी को अग्रणी बनाकर वहां गए जहां विष्णु और शंकर विराज रहे थे। वहां पर देवताओं ने महिषासुर के सभी उपद्रव एवं अपने पराभव का पूरा-पूरा वृतांत कह सुनाया। उन्होंने कहा, ''महिषासुर ने तो सूर्य, अग्नि, पवन, चंद्रमा, यम और वरुण और इसी प्रकार अन्य सभी देवताओं का अधिकार छीन लिया है। स्वयं ही सबका अधिष्ठाता बन बैठा है। उसने देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया। महिषासुर महा दुरात्मा है। देवता पृथ्वी पर मृत्यों की भांति विचर रहे हैं। उसके वध का कोई उपाय कीजिए। इस प्रकार मधुसूदन और महादेव जी ने देवताओं के वचन सुने, क्रोध से उनकी भौंहे तन गईं।'' इसके बाद उन्होंने दुर्गा को महिषासुर का वध करने को भेजा। जब युद्ध चल रहा थो तो ''देवी जी ने अपने बाणों के समूह से महिषासुर के फेंके हुए पर्वतों को चूर-चूर कर दिया। तब सुरापान के मद के कारण लाल-लाल नेत्रवाली चण्डिका जी ने कुछ अस्त-व्यस्त शब्दों में कहा - 'हे मूढ़! जब तक कि मैं मधुपान कर लूं, तब तक तू भी क्षण भर के लिए गरज ले। मेरे द्वारा संग्रामभूमि में तेरा वध हो जाने पर तो शीघ्र ही देवता भी गर्जने लगेंगे।' इस धमकी के बावजूद उस दैत्य ने युद्ध करना नहीं छोड़ा। तब देवीजी ने अपनी तेज तलवार से उसका सिर काटकर नीचे गिरा दिया....देवता अत्यंत प्रसन्न हुए। दिव्य महर्षियों के साथ देवता लोगों ने स्तुतियां की। गंधर्व गायन करने लगे। अप्सराएं नाचने लगीं।'' बहरहाल, इस कथा में देवी का 'सुरापान' स्वयं अनेक स्पष्ट आर्यों को जन्म देता है!

उपरोक्त तथ्य कुछ ऐसे अंतर्निहित पाठों की सृष्टि करते हैं, जो महज एक छोटे से

आलेख में नहीं निपटाए जा सकते। इसके लिए व्यापक शोध की जरुरत है। अगर इनके अर्थ संकेतों पर गौर किया जाए, तो असल में ये आज की भारतीय राजनीति का भी बहुत गंभीर पाठ प्रस्तुत करते हैं। इंद्र अगर प्रधानमंत्री था, तो ये विष्णु, शिव वगैरह कौन हैं, जिनके सामने गंधर्व गाते हैं और अप्सराएं नाचती हैं। पिछड़ा, दलित, औरत, वंचित लोगों के इस व्यापक अर्थपाठ के बीच जो ये नक्सलवाद के नाम पर आदिवासियों को उनके जंगल जमीन से हांका जा रहा है - इसके अध्ययन और पुनर्पाठ की प्रस्तुति से कितना कुछ सामने आएगा, यह कोई कल्पना से परे की चीज नहीं है। अब तो पश्चिम पार से आने वाले आर्यों को सेना की जरुरत भी नहीं है। उनकी पूंजी ही अनार्यों को खदेड़ देने के लिए काफी है और अपने देश के शासक उस पूंजी के गुलाम बने हैं ही।

फिलहाल, मै कहना चाहता हूं कि रणेन्द्र के चर्चित उपन्यास 'ग्लोबल गांव के देवता' मे वर्णित आदिवासियों, खासकर असुर जनजाति की त्रासदी को भी इन्हीं परिप्रेक्ष्यों में पढ़कर व्यापक शोध में शामिल करने को कोई पिछड़ा-दलित विद्वान या विदुषी आए। महिषासुर ललकार रहा है।

(ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंटस फोरम द्वारा वर्ष 2013 में जारी पुस्तिका 'किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन?' की चर्चित आलोचक व कथाकार राजकुमार राकेश द्वारा लिखित यह समीक्षा 'अपेक्षा','दलित-आदिवासी दुनिया', 'वॉयस ऑफ बुद्धा' समेत अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित है। मो. : 09780147830)

मिथक का सच

सुरेश पंडित

अनादिकाल से धर्म के पाखंडी कर्मकांडों के विरुद्ध विवेकशील लोगों की आवाजें भी समय-समय पर उठती रही हैं और उन्हें जन समर्थन भी मिलता रहा है। ज्योतिराव फुले, पेरियार और अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म के अनेक मिथकों को बेदर्दी से चीर फाडकर उनमें अन्तर्निहित सचाइयों को बेनकाब करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। उसी परम्परा में प्रेमकुमार मणि और राजेन्द्र यादव का नाम भी रखा जा सकता है। यादव तो बार-बार यह कहते रहे हैं कि हिन्दू धर्म का सबसे अधिक नुकसान गंगा और रामायण ने किया है। सारी दुनिया की गन्दगी अपने में समेटकर बहती गंगा आज भी परम पवित्र, पतित पावनी बनी हुई है और पाप के पंक में डूबे लोगों को साफ, शुद्ध कर उन्हें मृत्यु उपरान्त मोक्ष दिलाने की गारंटी भी दे रही है। इसी तरह उस रामायण की सर्वश्रेष्ठता भी अक्षुण्ण बनी हुई है जिसके द्वारा रची गई धर्मसत्ता व राजसत्ता के आदर्श और मर्यादा की मानसिकता सदा प्रश्नों, शंकाओं से घिरी रही है। हिन्दी के प्रमुख विचारक प्रेमकुमार मणि ने महिषासुरमर्दिनी दुर्गा की सचाई की खोज करते हुए लगभग एक दशक पहले जो लेख लिखा था वह पहले पटना के दैनिक 'हिन्दुस्तान' में फिर 'जन विकल्प' में और उसके बाद अक्टूबर, 2011 में 'फारवर्ड प्रेस' मासिक में छपा था। उसी लेख पर कुछ बुद्धिजीवियों और जेएनयू के छात्रों की नजर पड़ी और उन्होंने इसका एक पोस्टर यूनिवर्सिटी में लगाया। उसमें दुर्गा को महिषासुर पर किये गये अत्याचार और नृशंस हत्या का अपराधी घोषित किया गया था। इस पर सवर्ण छात्रों की हिंसक प्रतिक्रिया हुई थी। लेकिन महिषासुर के पक्ष में खड़ा किया गया वह आन्दोलन अभी थमा नहीं है। उसी के बारे में विभिन्न लेखकों द्वारा लिखित नौ लेखों का संग्रह 'किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन?' नामक पुस्तिका के रूप में प्रमोद रंजन ने संपादित किया है और बलिजन कल्चरल मूवमेन्ट, नई दिल्ली ने छपवाकर वितरित किया है।

इस पुस्तक का प्रमुख उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि आखिर महिषासुर नाम से शुरू किया गया यह आन्दोलन है क्या? इसकी आवश्यकता क्यों पड़ी? इसके निहितार्थ क्या हैं? और हम इस आन्दोलन को किस नजरिये से देखें? संपादक का मानना है कि 'इस आन्दोलन की महत्ता इसी में है कि यह हिन्दू धर्म की जीवन-शक्ति पर गहरी चोट करने की क्षमता रखता है। जैसे-जैसे यह प्रभावी व व्यापक होता जायेगा हिन्दू धर्म द्वारा उत्पीड़ित अन्य हाशियागत सामाजिक समूह भी धर्म ग्रन्थों के पाठों का विखंडन शुरू करेंगे और अपने पाठ निर्मित करेंगे। इन पाठों के स्वर जितने तीव्र और उग्र होंगे बहुजनों की सांस्कृतिक गुलामी के बंधन उतनी ही शीघ्रता से टूटेंगे।'

इस आन्दोलन के बीज प्रेमकुमार मणि के अनुसार 'देवासुर संग्राम' में देखे जा सकते हैं और वह दरअसल द्रविड़ और आर्यों का ही संग्राम था। आर्यों का नेता इन्द्र था जो उस समय शक्ति का केन्द्र माना जाता था। आर्यों का समाज पुरुष प्रधान था इसीलिये वे मातृभूमि की जगह पितृभूमि का नमन करते थे। उन्होंने अपने समाज के विस्तार के लिये पूरब अर्थात् बंगाल और असम से अपना तालमेल बढ़ाया। वह समाज मातृसत्तात्मक था इसलिये आर्यों ने शक्ति के रूप में दुर्गा को भी अपनी देवी मान लिया। आज भी उत्तर भारत के अधिकतर हिन्दू जिन राम, कृष्ण, शिव, हनुमान आदि देवताओं की पूजा करते हैं वे पौरुष के प्रतीक हैं। लेकिन देवी के रूप में दुर्गा, काली भी अब उन्हें मान्य हो गई है। दुर्गा को स्त्री-शक्ति का प्रतीक बनाने के लिये ही महिषासुर की कल्पना की गई और उसे इस रूप में चित्रित किया गया जिससे वह समाज का शत्रु दिखाई दे और देवी दुर्गा उसका संहार कर धर्मानुयायियों के लिये पूज्य बन जाये। लेकिन मणि के अनुसार इस कथा का शुद्ध पाठ कुछ और तरह का है-महिष अर्थात् भैंस, महिषासुर अर्थात् महिष का असुर। असुर का मतलब जो सुर नहीं है। सुर का अर्थ देवता अर्थात् वे लोग जो कोई काम नहीं करते। परजीवी होते हैं। इसके अनुसार असुर वे हुए जो काम करके पेट भरते हैं। इस तरह महिषासुर का अर्थ होता है भैंस को पालकर जीवन यापन करने वाले - ग्वाले, अहीर। ये भैंस पालक अहीर बंगदेश में वर्चस्व प्राप्त लोग थे और द्रविड़ थे इसलिये आर्य संस्कृति के विरोधी थे। आर्यों ने इन्हें पराजित करने के लिये दुर्गा का अनुसंधान किया। बंगदेश में वेश्यायें दुर्गा को अपने कुल का मानती थी इसीलिये आज भी दुर्गा की प्रतिमा बनाने के लिये वेश्याओं के घर से थोड़ी सी मिट्टी जरूर लाई-मंगाई जाती है। भैंस पालकों के नायक या सामन्त की हत्या करने में दुर्गा को नौ दिन लगे। इसी की याद में नवरात्र मनाये जाते हैं। इस तरह एक पशुपालक समुदाय के नायक का वध करने वाली दुर्गा को शक्ति की देवी की प्रतिष्ठा मिली है। यह कैसा संयोग है कि विजयादशमी का पर्व दुर्गा को महिषासुर से हुए युद्ध में मिली विजय की स्मृति में तो मनाया जाता ही है, राम के रावण पर विजय पाने की याद में भी मनाया जाता है।

झारखंड के पूर्व मुख्यमंत्री शिबू सोरने तो यह सगर्व घोषणा करते हैं कि वे महाप्रतापी महिषासुर के वंशज हैं इसलिये विजयादशमी या दशहरा उनके लिये खुशियां मनाने का दिन नहीं है। नाटककार अश्विनी कुमार पंकज बताते हैं कि सदियों से असुरों का वध किये जाते रहने के बावजूद आज भी झारखण्ड और छत्तीसगढ के कुछ इलाकों में असुरों का अस्तित्त्व बना हुआ है। लेकिन वे असुर किसी भी कोण से देखने में राक्षस जैसे दिखाई नहीं देते। भारत सरकार ने इन्हें 'आदिम जनजाति' की श्रेणी में रखा है। अभी तक वे विकास के हाशिये पर हैं। 1981 की जनगणना के अनुसार उनकी कुल जनसंख्या 9100 थी जो वर्ष 2003 में घटकर 7793 रह गई जबकि आज की तारीख में छत्तीसगढ़ में उनकी कुल संख्या 301 मात्र है। जिस धरती पर ये असुर विचरते हैं, कारपोरेट निगम उसके नीचे से बाक्साइट

निकालने को उतावले हो रहे हैं। छत्तीसगढ़ के निवासी अगरिया जाति के लोगों को भी वैरियर आल्विन ने असुरों की श्रेणी में दिखाया है। जलपाईगुड़ी जिले के अलीपुर द्वार स्टेशन के पास माझेरडाबरी चाय बागान में रहने वाले दहारू असुर कहते हैं कि महिषासुर दोनों लोकों अर्थात् स्वर्ग और पृथ्वी पर सबसे अधिक शक्तिशाली थे। देवताओं को लगता था कि जब तक ये जीवित रहेंगे उनको महत्त्व नहीं मिलेगा। इसीलिये उन्होंने दुर्गा के नेतृत्त्व में महिषासुर को ही नहीं उनके सहचरों को भी मार डाला और उनके गले काटकर एक मुंडमाला बनाई और दुर्गा को पहना दी। चित्रों में दुर्गा को महिषासुर की छाती पर चढ़े रौद्र रूप में ही दिखलाया जाता है।

अधिकतर आदिवासी रावण को भी अपना पूर्वज मानते हैं। दक्षिण के अनेक द्रविड़ समुदायों में रावण का पूजन आज भी किया जाता है। झारखण्ड और बंगाल के सीमावर्ती इलाकों में तो बाकायदा नवरात्र अर्थात् दशहरे पर रावणोत्सव मनाया जाता है। झारखण्ड के पूर्व मुख्यमंत्री शिबू सोरेन आज भी रावण को अपना कुल गुरू मानते हैं।

'इंडिया टुडे' हिन्दी के प्रबंध संपादक दिलीप मंडल इसी प्रसंग में यह सवाल उठाते हैं कि क्या धार्मिक ग्रन्थों की वैकल्पिक व्याख्या नहीं की जा सकती? सचाई यह है कि इसी पद्धति से उनमें वर्णित चरित्रों और घटनाओं के नये-नये पहलू सामने आ सकते हैं और इससे वैज्ञानिक चिन्तन को बढ़ावा मिल सकता है। प्राचीन काल में शास्त्रों की व्याख्याओं को लेकर जो शास्त्रार्थ होते थे उन्होंने ही हिन्दू धर्म के अनेकों मतों, पन्थों, समुदायों और विचार परम्पराओं को जन्म दिया था। लेकिन जैसे-जैसे समाज ज्ञान और विज्ञान से अधिक समृद्ध होता गया है लोगों की मानसिकता संकीर्ण होती गई है। उन्हें जो पाठ जिस तरह समझाया गया है वे उसी रूप में उसे अपनाना चाहते हैं। न स्वयं कोई नवीन चिन्तन करते हैं तथा न दूसरों के नये विचारों को अपनाने के लिये अपने मस्तिष्क के खिड़की दरवाजे खोलते हैं। वास्तव में पुनर्पाठ की प्रक्रिया तो लोकतांत्रिक विचार पद्धति को जीवन्त रखती है और उसे समृद्ध बनाती है। वे इस प्रसंग में फुले की कालजयी कृति 'गुलामगीरी' और अम्बेडकर की 'रिडल्ज आफ हिन्दूइज्म' के उदाहरण सामने रखते है। फुले के अनुसार हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थ ब्राह्मण पुरोहितों ने अपने हितों के संरक्षण के लिये निर्मित किये हैं और उन पर नई व्याख्याओं का इसलिये वे विरोध करते हैं ताकि समाज पर उनकी पकड़ बदस्तूर बनी रहे।

महिषासुर शहादत दिवस मनाने से देशभर में एक नई बहस शुरू हुई है। पूरी निर्भीकता के साथ अब यह प्रश्न किया जाने लगा है कि यदि दुर्गा इतनी बलशाली थी तो उसने गोरी, गजनी, बाबर, हिटलर जैसे लोगों का वध क्यों नहीं किया? जिस महिषासुर को एक ऐसे नृशंस राक्षस के रूप में चित्रित किया गया है जो लोगों को भयभीत व आतंकित करने वाला था वह वास्तव में इसी देश का सामान्य नागरिक था जो स्वभाव से हिंसा-विरोधी और प्रकृति-पूजक था। उसे बुरा बताकर मारा गया। जबकि स्वयं सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस मार्कण्डेय

काटजू और ज्ञान सुधा मिश्र ने जनवरी 2011 में अपने एक निर्णय मे कहा था - 'राक्षस और असुर कहे जाने वाले लोग ही इस देश के मूल नागरिक हैं।' अन्य विद्वानों का भी मत है कि असुर आर्यों से श्रेष्ठ हैं क्योंकि वे सुरा-शराब का सेवन नहीं करते। ब्राह्मणवादी ग्रन्थों के अनुसार यज्ञ विरोधी महिषासुर के पिता रंभासुर असुरों के राजा थे तथा उनकी माँ का नाम श्यामला राजकुमारी था। इस देश के मूल निवासी जिन्हें आर्यों ने साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्व सिन्धु घाटी की सभ्यता को नष्ट कर हजारों वर्ष चले युद्ध में छल, कपट से परास्त कर असुर, अछूत, शुद्र, राक्षस आदि बनाकर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर एवं गुलाम बना लिया था उनके नायकों की हत्या कर उन्हें असुर व राक्षस घोषित कर दिया गया। कहा जाता है कि महिषासुर इतना पराक्रमी राजा था कि उसने देवताओं के राजा इन्द्र को भी युद्ध में परास्त कर दिया था, ऐसे राजा का वध करवाने के लिये देवताओं ने दुर्गा को भेज कर इस काम को सम्पन्न करवाया था। उधर, ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट फोरम के अध्यक्ष जितेन्द्र यादव का कहना है कि पिछड़ी जाति बहुल उनके गांव में महिषासुर जैसी कद-काठी के तो कई व्यक्ति आज भी देखने को मिल जाते हैं पर दुर्गा जैसी कोई महिला कभी दिखाई नहीं दी।

दरअसल इतिहास का कथ्य किसी ऐसे सत्य को प्रकट नहीं करता जिस पर पुनर्विचार किया ही नहीं जा सकता। हर पीढ़ी अपने अर्जित ज्ञान और संचित अनुभवों के आधार पर अपना इतिहास निर्मित करती है। इस प्रक्रिया में अक्सर पूर्व में प्रतिष्ठित नायक खलनायक बन जाते हैं और खलनायक सम्मान के पात्र। जिन असुरों व राक्षसों को मानवता के शत्रु के रूप में निन्दनीय बनाया जाता है वे देश के मूल निवासी के रूप में सामने आते हैं और अपनी पहचान स्थापित करने के लिये अपनी गाथा स्वयं लिखने को तत्पर हो जाते हैं।

(पुस्तिका ' किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन' की यह समीक्षा 'वर्तमान साहित्य' के सितंबर, 2013 अंक से साभार। सुरेश पंडित हिंदी के वरिश्ठ लेखक व आलोचक हैं। मो. 8058725639)

सौ जगहों पर मनाया जा रहा शहादत दिवस

अरूण कुमार

वर्ष 2013 में लगभग 60 जगहों पर महिषासुर शहादत दिवस का आयोजन किया गया था। वर्ष 2014 में लगभग 100 जगहों पर इस दिवस का आयोजन किये जाने की सूचना है।

जेएनयू में इस बार 9 अक्टूबर, 2014, शरद पूर्णिमा को महिषासुर शहादत दिवस का आयोजन किया जा रहा है। आयोजक संगठन ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम के राष्ट्रीय अध्यक्ष जितेंद्र यादव कहते हैं कि इस बार के महिषासुर शहादत दिवस के आयोजन में देश के कोने-कोने से बहुजन बुद्धिजीवी, पत्रकार और सामाजिक कार्यकर्ता हिस्सा लेंगे। इस अवसर पर महिषासुर दुर्गा के प्रसंग को चित्रों में उकेरने वाले प्रसिद्ध चित्रकार लाल रत्नाकर के चित्रों की प्रदर्शनी भी लगाई जाएगी।

झारखंड के गिरीडीह में दामोदर गोप के नेतृत्व में आयोजन हो रहा है। दामोदर गोप गाते हुए कहते हैं, 'छीनल गइल मोर रजवा रे दइबा' हम लोग कितने मूर्ख हैं कि जिस दुर्गा ने हमारे राजा की हत्या की है हम उसी की पूजा कर रहे हैं। 'राम सलाम, प्रणाम नहीं, जय महिषासुर की।' अभिवादन के साथ गिरीडीह की सड़कों पर महिषासुर की शोभा यात्रा निकाली जा रही है।

ब्राम्हणवादी आंदोलनों का गढ़ रही बिहार की भूमि महिषासुर आंदोलन के लिए भी उर्वर साबित हो रही है। इस वर्ष लगभग 15 जिलों में लोग अपने-अपने तरीकों से महिषासुर को याद कर रहे हैं। नवादा में दुर्गा पूजा के पंडालों के बरक्स महिषासुर के पंडालों का निर्माण हो रहा है। इन पंडालों में महिषासुर की प्रतिमा एक न्यायप्रिय बहुजन नायक के रूप में मौजूद हैं। आयोजक सुमन सौरभ कहती हैं कि हिन्दू धर्म का बोझ महिलाओं ने अपने कंधे पर उठा रखा है। हमारा फोकस महिलाओं को महिषासुर-दुर्गा प्रसंग के माध्यम से बहुजनों की गुलामी के कारणों को समझाना है। अब तक को जो हमारा प्रयास रहा है उसमें हम सफल होते दिख रहे हैं। महिलाएं गौर से हमारी बातें सुन रही हैं। इस आयोजन में पूर्व मंत्री व आरा से लोकसभा प्रत्याशी भगवान सिंह कुशवाहा, पूर्वमंत्री व नवादा से लोकसभा प्रत्याशी राजवल्लभ यादव और अतरी के विधायक प्रो. कृष्णनंदन यादव मुख्य अतिथि हा. ेंगे।

पटना में अधिवक्ता मनीष रंजन सामाजिक कार्यकर्ता उदयन राय, राकेश यादव और पत्रकार नवल कुमार 'दुर्गापति' ने बहुजनों को समझाने का बीड़ा उठाया है। मनीष रंजन कहते हैं कि दुर्गा पूजा के दौरान पटना में चंदा देने और वसूलनें का जिम्मा बहुजन वर्ग

भक्ति भाव से उठाता है। लेकिन ब्राम्हण वर्ग उन चंदों का उपयोग अपना घर और पेट भरने में करते हैं। हमारे लागों को यह पता भी नहीं हैं कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं। हम घर-घर जाकर लोगों को दुर्गा कथा का बहुजन पाठ सुना रहे हैं। मुजफ्फरपुर में लड्डू सहनी, पंकज सहनी, रामाशंकर सिंह यादव और हरेंद्र यादव आयोजन की तैयारियों में लगे हुए हैं। पंकज सहनी बताते हैं कि ब्राम्हणों की चालाकी देखिए कि जिसकी हत्या की उसी के वंशजों से हत्या का जश्न भी मनवा रहे हैं। यह सिर्फ जश्न का मामला नहीं है यह अपनी हिस्सेदारी और अपने खोए हुए हक को प्राप्त करने का आंदोलन भी है जिसे ब्राम्हणों ने दबा रखा है। जिसे राक्षस कहा जाता है, दरअसल वे हमारे पूर्वज थे जो अपने संसाधनों की रक्षा के लिए कुर्बानी दी।

सीवान के युवा सामाजिक कार्यकर्ता प्रदीप यादव, रामनरेश राम ने 'राजा महिषासुर समारोह समिति' के बैनर तले आयोजन कर रहे हैं। 5 अक्टूबर 2014 को जिले के बहुजन बुद्धिजीवियों के नेतृत्व में महिषासुर-दुर्गा प्रकरण पर चिंतन मनन किया जाएगा। प्रदीप यादव बताते हैं कि लोग महिषासुर को अपना नायक मानने लगे हैं यदि यह आंदोलन इसी तरह से चलाया गया तो शीघ्र ही दुर्गा भक्तों की संख्या में गिरावट आ जाएगी।

पूर्वी चंपारण में बिरेंद्र गुप्ता, पश्चिमी चंपारण में रघुनाथ महतो, शिवहर में चंद्रिका साहू, सीतामढ़ी में रामश्रेष्ठ राय, गोपालगंज के थावे मंदिर के महंथ राधाकृष्णदास आदि लोग अपने सीमित संसाधनों के बावजूद महिषासुर शहादत दिवस का आयोजन कर रहे हैं।

उत्तर प्रदेश में यादव शक्ति पत्रिका कई जिलों में अपने पाठकों के माध्यम से महिषासुर शहादत दिवस का आयोजन कर रहा है। राजधानी लखनऊ में 'यादव शक्ति' पत्रिका के संपादक राजवीर सिंह यादव एक अभियान की तरह महिषासुर शहादत दिवस की तैयारियों में लगे हुए हैं। राजवीर सिंह ने बताया कि इस आंदोलन ने कम समय में बड़ी उपलब्धि हासिल की है। बड़े पैमाने पर लोग हमारे साथ जुड़ रहे हैं। देवरिया में यादव शक्ति पत्रिका के प्रधान संपादक चंद्रभूषण सिंह यादव आंदोलन की कमान संभाले हुए हैं। चंद्रभूषण सिंह यादव सोशल मीडिया पर लगातार सक्रिय हैं और रोज आंदोलन से जुडे मुद्दे पर लिखते हैं। फेसबुक पर इनके कथनों को शेयर करने वालों की संख्या सैकड़ों में हैं।

कौशांबी, उत्तर प्रदेश के जुगवा गांव में एनबी सिंह पटेल और अशोक वर्द्धन के नेतृत्व में जनआंदोलन करने की तैयारी है। इन लोगों ने अपने गांव का नया नामाकरण ही 'महिषासुर' के नाम पर 'जुगवा महिषासुर' करने का फैसला कर लिया है। अशोक वर्द्धन कहते हैं कि सीधी सी बात है कि आर्य आक्रमणकारी के रूप में बाहर से आए और यहां के मूलनिवासियों पर हमले किए। सीधी लड़ाई में हारने के बाद आर्यों ने छल का सहारा लिया और हमारे नायक महिषासुर की हत्या कर दी। छल की हद तो तब हो गई जब हमारे ही सीने में हमारे ही नायक के खिलाफ कूट-कूट कर घृणा भर दी। हम लोगों के सीने से उसी घृणा की भावना को ऐतिहासिक तथ्यों और तर्कों के माध्यम से निकालने का प्रयास

कर रहे हैं। मिर्जापुर में कमल पटेल और सुरेंद्र यादव, इलाहाबाद में लड्डू सिंह और राममनोहर प्रजापति, बांदा में मोहित वर्मा, बनारस में कृष्णा पाल, अरविंद गोंड और रिपुसूदन साहू आदि लोग शहादत दिवस की तैयारियों में लगे हुए हैं। पश्चिम बंगाल के पुरुलिया जिले में स्वप्न कुमार घोष के नेतृत्व में महिषासुर शहादत दिवस का आयोजन किया जा रहा है। घोष कहते हैं कि बंगाल महिषासुर की कर्मभूमि रही है और यहीं छलपूर्वक महिषासुर की हत्या की गई थी। इसी कारण दुर्गा की पूजा का प्रचार सबसे ज्यादा यही हुआ। यहां के लोगों को महिषासुर की कथा का बहुजन पाठ बताना ज्यादा जरूरी है। इसलिए 9 अक्टूबर 2014 को हमलोग एक बड़े जनजुटान में लगे हुए हैं। इसी तरह, उड़ीसा के कालाहांडी जिले में नारायण वागर्थी महिषासुर शहादत दिवस का आयोजन कर रहे हैं।

इस तरह से हमें पूरे उत्तर भारत के लगभग 100 जगहों पर महिषासुर शहादत दिवस मनाए जाने की सूचना हमें मिली है। लोग अपने-अपने तरीकों से अपने नायक को याद करेंगे और सवर्णों/आर्यों द्वारा छीन ली गई संपदा को पुनः प्राप्त करने की शपथ लेंगे।

(ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट फोरम के राष्ट्रीय संयोजक अरूण कुमार आईसीएसएसआर, नई दिल्ली में पोस्ट डॉक्टोरल फेलो हैं।)

आर्य व्याख्या का आदिवासी प्रतिकार

विनोद कुमार

भारतीय वांड़मय-रामायण, महाभारत, पुराण आदि इस प्रजाति के जीवों के विवरण से भरे पड़े हैं। ये दानव भीमकाय, विकृत आकार के, काले व मायावी शक्तियों से भरे हुए ऐसे जीव थे जो देवताओं और मृत्युलोक में रहने वाले भद्र लोगों को परेशान करते रहते थे। इस बारे में विद्वान और इतिहासवेत्ता बहुत कुछ लिख चुके हैं और यह मानकर चलते हैं कि ये गाथाएं सदियों तक चले आर्य-अनार्य युद्ध की छायाएं हैं। परंतु इन कथाओं को इस रूप में देखने वाले और अन्य लोग भी सहज भाव से यह स्वीकार करते आए हैं कि दस सिर वाले रावण को मार कर राम अयोध्या लौटे होंगे और उस अवसर पर दिये जलाकर राम, लक्ष्मण और सीता का स्वागत अयोध्यावासियों ने किया होगा। तभी से दीपावली मन रही है और रावण वध का आयोजन हो रहा है। उसी तरह, पूर्वोत्तर भारत में महिषासुर का वध करने वाली दुर्गा की आराधना होती है। हाल के वर्षों में बंग समाज के लोग जिन राज्यों में गए, वहां भी अब दुर्गा पूजा होने लगी है। लेकिन सामान्यतः दुर्गा पूजा बिहार, बंगाल और ओड़िशा का त्योहार है। कभी-कभी यह जिज्ञासा होती है कि दुर्गा पूजा पूर्वोत्तर और पूर्वी भारत में ही क्यों होती है। इसी तरह, रावण वध का उत्सव उत्तर भारत में ही क्यों मनाया जाता है? रामलीलाएं इसी क्षेत्र में क्यों आयोजित होती हैं? दक्षिण भारत में क्यों नहीं?

छल के शिकार रहे हैं असुर

बहुधा यह भी देखने में आता है कि धार्मिक ग्रंथों, पुराणों आदि में दुष्ट तो दानवों को बताया जाता है, लेकिन धूर्तता करते देवता दिखते हैं। मसलन, समुद्र मंथन तो देवता और दानवों ने मिलकर किया लेकिन समुद्र से निकली लक्ष्मी सहित सभी मूल्यवान वस्तुएं देवताओं ने हड़प लीं। यहां तक कि अमृत भी सारा का सारा देवताओं के हिस्से गया और जब राहू-केतु ने देवताओं की पंक्ति में शामिल होकर अमृत पीना चाहा तो उन दोनों को अपने सर कटाने पड़े। महाभारत में लाक्षागृह से बचकर निकलने और जंगलों में भटकने के बाद, पांडवपुत्र भीम किसी दानवी से टकराए। उसके साथ कुछ दिनों तक सहवास किया और फिर वापस अपनी दुनिया में चले गए। बेटा घटोत्कच कैसे पला-बढ़ा, इसकी कभी सुध नहीं ली। हालांकि उस बेटे ने महाभारत युद्ध में अपनी कुर्बानी देकर अपने पिता के कर्ज को चुकता किया। मर्यादा पुरुषोत्तम राम और रावण के व्यक्तित्व की तो बहुत सारी समीक्षाएं हुईं। रावण सीता को हर कर तो ले गया लेकिन उनके साथ कभी अभ्रद व्यवहार नहीं

किया, जबकि राम ने अपनी पत्नी को लगातार अपमानित किया। छल से बालि की हत्या की। एकलव्य की कथा तो इस बात की मिसाल ही बन गई है कि एक गुरु ने अगड़ी जाति के अपने शिष्य के भविष्य के लिए एक आदिवासी युवक से उसका अंगूठा ही किस तरह गुरुदक्षिणा में मांग लिया। पौराणिक गाथाओं की ये सब बातें पिछले कुछ सालों से तीखी बहस का हिस्सा बनी हैं। पहले दलित-बहुजनों का गुस्सा और आक्रोश फूटा और वह ब्राह्मणवादी व्यवस्था से घृणा की हद तक चला गया। और अब पिछले कुछ समय से आदिवासी समाज भी इस मुद्दे पर आंदोलित है।

मध्य भारत में केन्द्रित

प्राचीन भारतीय इतिहास की अलग अलग व्याख्याएं हो रही हैं, खासकर उस क्षेत्र के इतिहास की जिसे अब बंगाल, बिहार और ओड़िशा कहा जाता है। इतिहास की जिन पुस्तकों की मदद से यह बहस चल रही है, उनमें सबसे ज्यादा चर्चित है डब्ल्यू डब्ल्यू हंटर की 'एनल्स अहफ रूरल बंगाल' हंटर का मानना है कि वैदिक युग के ब्राह्मणों और मनु ने जिस हिंदू धर्म की स्थापना की वह दरअसल मध्यभारत का धर्म है। मध्यभारत, यानी हिमालय से विंध्याचल पर्वतमाला तक का भौगोलिक क्षेत्र। हिंदू धर्म की स्थापना मध्य एशिया से निकलकर दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में कई सभ्यताओं को जन्म देने वाले आर्यों ने की जिन्होंने हिन्दुस्तान में सबसे पहले पश्चिमोत्तर क्षेत्र की दो नदियों-सरस्वती और दृश्यवती-के बीच पड़ाव डाला। वहां से वे दक्षिण-पूर्व दिशा में बढ़े और गंगा नदी के किनारे-किनारे बसते हुए बंगाल के मुहाने तक पहुंच गए। इन्हीं इलाकों को मनु अपना इलाका-हिंदू धर्म का इलाका-मानते हैं जो शुद्ध बोलता है, उसके बाहर राक्षस रहते हैं जो शुद्ध बोल नहीं सकते, अखाद्य पदार्थों का भक्षण करते हैं और जो आर्यों की तरह गौर वर्ण के नहीं हैं बल्कि काले हैं।

वर्णों का मिश्रण

मनु द्वारा व्याख्यायित हिंदू धर्म यहां अपनी जड़ें जमा पाता और उसका प्रचार-प्रसार हो पाता, उसके पहले ही बौद्ध धर्म उठ खड़ा हुआ जो इस इलाके के लोगों को सहज स्वीकार्य भी हुआ। यहां के राजा भी ब्राह्मण, क्षत्रिय नहीं बल्कि यहां के मूलवासी थे या वे लोग थे जो मनु की वर्णवादी व्यवस्था के बाहर थे। चाहे वे सम्राट अशोक हों या फिर गौड़ को अपनी राजधानी बनाकर 785 से 1040 ई. तक बंगाल पर शासन करने वाले राजे। उनमें से अधिकांश बौद्ध धर्म को मानने वाले थे। सन् 900 ई. में खुद को हिंदू मानने वाले बंगाल के राजा आदिश्वर ने वैदिक यज्ञ व पूजा-पाठ के लिए कन्नौज से पांच ब्राह्मणों को बुलवाया। वे पांचों ब्राह्मण गंगा के पूर्वी किनारे पर बसे। स्थानीय औरतों के साथ घर बसाया, बच्चे पैदा किए। जब वे यहां अच्छी तरह बस गए, उसके बाद कन्नौज से उनकी पत्नियां यहां

आईं। वे स्थानीय पत्नियों और कथित रूप से अवैध संतानों को वहीं छोड़कर आगे बढ गए। उनकी अवैध संतानों से राड़ी ब्राह्मण पैदा हुए, साथ ही अनेक अन्य जातियां जैसे कायस्थ आदि। लेकिन जिन मिश्रित नस्ल और जातियों का भारत में आविर्भाव हुआ, वे सिर्फ मनु की वर्ण व्यवस्था के लोगों के बीच आपसी विवाह का नतीजा न होकर ब्राह्मणों और हिंदू वर्ण व्यवस्था के बाहर की जातियों के मिश्रण का भी नतीजा था। हिंदू वर्ण व्यवस्था का आभिजात्य तबका ब्राह्मण ही था। तो, तब के बंगाल में, जिसमें वीरभूम और मानभूम शामिल थे-की आबादी के मूल तत्व कौन कौन थे? हंटर ने पंडितों के हवाले से इस तथ्य का ब्योरा कुछ इस प्रकार दिया है- 1.यहां के गैर आर्य आदिवासी 2.वैदिक व सारस्वत ब्राह्मण 3. छिटपुट वैश्य परिवारों के साथ परशुराम द्वारा खदेड़े गए मध्यभारत के क्षत्रिय जो बिहार से नीचे नहीं उतर पाए 4. सन् 900 ई. में कन्नौज से लाए गए ब्राह्मण और उनके वंशज और 5. उत्तर भारत से पिछले कुछ सालों में आए क्षत्रिय, राजपूत, अफगान और मुसलमान आक्रमणकारी। और ये सभी मनु की वर्ण व्यवस्था के हिस्सा नहीं थे। बंगाल के ब्राह्मणों को उत्तर भारत, यानी मनु के मध्यभारत के ब्राह्मणों ने राड़ी ब्राह्मणों की संज्ञा दे रखी थी और उनसे रोटी-बेटी का संबंध नहीं रखते थे।

कर्मकांडी नहीं थे वे

अस्तु, बंगाल की आबादी दो बड़े खेमों में विभाजित थी। आक्रमणकारी आर्य, जिन्हें ब्राह्मणों जैसा दर्जा प्राप्त था और यहां के आदिवासी जिन्हें आक्रमणकारियों ने यहां पाया था और जिन्हें वे जंगलों में खदेड़ते जा रहे थे। आर्यों को अपनी श्रेष्ठता का इतना अहंकार था कि वे आदिवासियों को मनुष्य से नीचे का, जीव-जंतु का, दर्जा देने लगे। आदिवासियों से उनकी नफरत की अनेक वजहें थीं। एक तो उनका वर्ण काला था, दूसरा, वे ऐसी भाषा बोलते थे जिसका, उनके अनुसार, कोई व्याकरण नहीं था, तीसरा, उनके खान-पान का तरीका और चौथा, वे किसी तरह के कर्मकांड में विश्वास नहीं करते थे, इंद्र की पूजा नहीं करते थे और उनका कोई ईश्वर नहीं था। वैदिक ऋ चाओं में उन्हें दसानन, दस्यु, दास, असुर, राक्षस जैसी संज्ञाओं से संबोधित किया जाने लगा।

वेद-पुराणों और भारत के ब्राह्मण ग्रंथों में आदिवासी समुदायों को खल चरित्र के रूप में पेश किया गया है जो सरासर गलत है। असुर, मुण्डा और संथाल आदिवासी समाज में कई ऐसी परंपराएं और वाचिक कथाएं हैं जिनमें उनका विरोध दर्ज है। चूंकि गैर-आदिवासी समाज, आदिवासी भाषाएं नहीं जानता है इसलिए उसे लगता है कि आदिवासी हिंदू मिथकों और उनकी नस्लीय भेदभाव वाली कहानियों के खिलाफ नहीं हैं।

बहुधा हम भारतीय समाज की सामूहिक चेतना की बात करते हैं लेकिन क्या वास्तव में हमारे समाज की कोई सामूहिक चेतना है? या इन नस्लीय भेदभाव के रहते बन सकती है?

क्या हमने कभी विचार किया है कि आजकल जो दुर्गा पंडाल बनते हैं, भव्य प्रतिमाएं

बनती हैं, सप्ताह दस दिन तक चलने वाले मेले-ठेले में ठगा-ठगा सा खड़ा एक आदिवासी विस्फारित नेत्रों से इन आयोजनों को देखकर क्या महसूस करता है? या हम इंतजार कर रहे हैं कि वह अपने ही पूर्वजों की हत्या के इस उत्सव का धीरे-धीरे आनंद लेने लगेगा? ऐसा लगता तो नहीं, क्योंकि आदिवासी और गैर आदिवासी समाज के बीच विकास के मॉडल को लेकर एक तीखा युद्ध अभी भी जारी है।

(फारवर्ड प्रेस के अक्टूबर, 2014 अंक से साभार। पत्रकार विनोद कुमार ने लंबे समय तक पत्रकारिता की है और अब एक्टिविज़्म के साथ-साथ हिंदी कथा लेखन कर रहे हैं। झारखंड के समाज पर 'समर शेष है' और 'मिशन झारखंड' जैसे इनके उपन्यास बहुचर्चित रहे हैं।)

जिज्ञासाएं और समाधान

महिषासुर की हत्या कब हुई?

भारतीय उपमहाद्वीप में सुव्यवस्थित इतिहास लेखन की परंपरा नहीं रही है, इसलिए महिषासुर के जीवनकाल अथवा हत्या का ठीक-ठीक काल-निर्धारण बहुत कठिन है। दुर्गा की कथा 'मार्कण्डेय पुराण' में है। इतिहासकारों ने इस पुराण का लेखन-काल 250 से 500 ईसवी के बीच माना है। इस आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि महिषासुर का काल इससे पूर्व रहा होगा। यानी, यह घटना 2000 से 2500 वर्ष से अधिक पुरानी है।

महिषासुर शहादत दिवस किस तारीख को मनाया जाना चाहिए?

महिषासुर शहादत दिवस हर वर्ष शरद (अश्विन) पूर्णिमा को मनाया जाना चाहिए। विदेशी आक्रमणकर्ताओं (जिन्हें ब्राह्मण धर्मग्रंथों में देवता कहा गया है, तथा जो आज 'द्विज' के रूप में जाने जाते हैं) द्वारा भेजी गयी दुर्गा अश्विन मास के 16 वें दिन (शुक्ल पक्ष का प्रथम दिन) को महिषासुर के दुर्ग में पहुंची थी। इसके सातवें दिन रात में दुर्गा ने महिषासुर के दुर्ग का द्वार (पट) खोल दिया, ताकि आसपास छिपे देवता आक्रमण कर सकें। इस दौरान देवतागण महिषासुर के दुर्ग के इर्द-गिर्द झाड़-झाडियों में अपने अस्त्र-शस्त्रों के साथ बहुत बुरी हालत में कंद-मूल खाकर छुपे रहे थे। दो दिनों तक भयानक युद्ध हुआ। छलपूर्वक अचानक हुए हमले के बावजूद महिषासुर व उनके गणों को हराना देवताओ के लिए संभव न था। इसलिए उन्होंने नौवें दिन फिर दुर्गा को आगे किया। महिषासुर की प्रतिज्ञा थी कि वे स्त्रियों और पशुओं का संरक्षण करेंगे। उनकी इस प्रतिज्ञा का लाभ दुर्गा को सामने कर देवताओं ने उठाया और अपने समय के प्रतापी सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनैतिक नेतृत्वकर्ता महिषासुर की हत्या कर दी तथा भयानक नरसंहार किया। इसी हत्या और नरसंहार के उपलक्ष्य में आश्विन मास के दसवें दिन 'दशहरा' का त्योहार आयोजित किया जाता है। यह आज के बहुजनों के पूर्वजों तथा उनके नायक की हत्या का जश्न है।

आदिवासियों व विभिन्न अद्विज जातियों के बीच प्रचलित अनुश्रुतियों के अनुसार महिषासुर के पराजित अनुयायियों ने इस घटना के पांच दिन बाद शरद पूर्णिमा (दशहरा के ठीक पांच दिन बाद) को एक विशाल सभा की थी तथा अपनी संस्कृति को जीवित रखने व अपनी खोयी हुई संपदा का वापस लेने संकल्प किया था। इसी घटना की याद में 'महिषासुर शहादत दिवस' का अयोजन शरद पूर्णिमा को दिन अथवा रात में किया जाना चाहिए। ज्ञातव्य है कि असुर-श्रमण-बहुजन परंपरा में शरद पूर्णिमा बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती है। कृष्ण की कथाओं में यह 'कौमुदी महोत्सव' का अवसर है जबकि बुद्ध के जीवन चरित में यह नई यात्रा की शुरुआत का दिन माना जाता है।

शहादत दिवस का आयोजन कैसे करें?

पिछले कुछ वर्षों में महिषासुर शहादत दिवस के आयोजन के कुछ सर्वमान्य तरीके निम्नांकित हैं :

1. महिषासुर शहादत दिवस में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने की कोशिश करनी चाहिए।

2. आयोजन सात दिवसीय होना चाहिए। यानी, महिषासुर की हत्या के दिन के बाद (आश्विन माह के 24 वें दिन/ दशहरा की नवमी) से शरद पूर्णिमा के दिन तक यह चले। मुख्य आयोजन शरद पूर्णिमा के दिन हो। जहां समयाभाव हो वहां आयोजन एक दिवसीय हो और इसे शरद पूर्णिमा के दिन मनाया जाए।

3. शहादत दिवस के आयोजन के लिए मूर्ति/प्रतिमा का निर्माण आवश्यक नहीं है। लेकिन अगर मूर्ति का निर्माण किया जाता है तो उसका नदियों, तालाबों आदि किसी भी प्रकार के जलस्रोत में या कहीं भी 'विसर्जन' न किया जाए। आयोजन के बाद मूर्ति को या तो आयोजन समिति के बहुमत के आधार पर किसी बहुजन व्यक्ति के घर अथवा किसी सामुदायिक भवन में रखा जाए अथवा मूर्ति/प्रतिमा को ससम्मान नष्ट कर उनके अंशों को समूची सृष्टि की बेहतरी और अच्छी फसल की कामना के साथ किसी उपजाऊ खेत में बिखेर दिया जाए। इस प्रसारण के बाद प्रतिमा के मिट्टी युक्त अंशों को लोग अगले आयोजन तक अपने घरों में रखें। इस प्रकार महिषासुर की प्रतिमा का **'विर्सजन'** नहीं बल्कि **'प्रसारण'** हो।

4. शरद पूर्णिमा के दिन आयोजन स्थल से दुर्गासप्तशती, मार्कण्डेय पुराण समेत विभिन्न ब्राह्मण पुराणों, स्मृतियों व अन्य धर्मग्रंथों की शव-यात्रा निकाली जानी चाहिए। इस शव यात्रा की समाप्ति तथा शव दहन का कार्यक्रम संवैधानिक सत्ता केंद्रों (यथा, राज्य स्तरीय कार्यक्रम में राजधानी में स्थित विधान सभा सचिवालय, जिला स्तरीय आयोजन में समाहारणालय, प्रखंड स्तरीय कार्यक्रम में प्रखंड कार्यालय तथा गांव स्तरीय कार्यक्रम में पंचायत भवन के समक्ष अथवा ऐसी जगह न उपलब्ध होने की स्थिति में किसी अन्य सामुदायिक सार्वजनिक परिसर) में आयोजित किया जाना चाहिए।

5. शव दहन यथासंभव क्षेत्र की किसी सम्माननीय महिला के हाथ से हो।

6. अगर संभव हो तो महिषासुर के नाम पर विभिन्न खेल व चित्रकला प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाए।

7. महिषासुर उत्सव के दौरान विभिन्न बहुजन जातियों द्वारा पारंपरिक तौर पर गाये जाने वाले श्रम गीतों (यथा, बिरहा, फरूवाही, कहरूवा, जतसार व रोपनी-सोहनी के गीत आदि) का गायन हो।

8. विभिन्न बहुजन नायकों के संबंधित पारंपरिक गाथाओं का मंचन किया जाए तथा बहुजन दृष्टिकोण से सृजनात्मक लेखन कर सकने की क्षमता रखने वाले युवक-युवतियों को इन विषयों पर नये नाटक लिखने के लिए प्रोत्साहित किया जाए व उनका मंचन किया जाए।

9. इन आयोजनों का फिल्मांकन किया जाए तथा नवीनतम संचार माध्यमों व तकनीकों के माध्यम से इसका प्रसार किया जाए व इन्हें संरक्षित किया जाए।

10. सर्वाधिक स्मरणीय यह है कि शहादत दिवस बहुजन समुदाय की एकता, अपनी संस्कृति की पुनर्स्थापना और अपनी खोयी हुई भौतिक संपदा की वापसी के लिए संकल्प लेने का कार्यक्रम हो। कार्यक्रम के दौरान होने वाले संभाषण आदि इन्हीं विषयों पर केंद्रित हों।

Move to observe 'Mahishasur Day' on JNU campus

EXPRESS NEWS SERVICE
NEW DELHI, OCTOBER 23

DESPITE receiving a showcause notice from the Jawaharlal Nehru administration last year, All India Backward Students' Organisation (AIBSF) will be observing 'Mahishasur's Martyrdom Day' on October 29.

The event had last year led to a clash between students organisations on the JNU campus. Following this, a police case had been registered and a showcause notice was issued to AIBSF president Jeetendra Yadav.

Last year's incidents, however, have not acted as a deterrent for AIBSF. "We have pasted posters about the event all over the campus. Students from Lucknow University, Bhimrao Ambedkar University and Patna University will also join us," Yadav said.

Elaborating on the belief behind the 'Mahishasur's Martyrdom Day', Yadav said, "Mahishasur was a powerful ruler who led the working

—who are known as gods in mythology—came to the region with the intention of controlling it as it was very fertile, a battle ensued. Mahishasur said he would not kill animals or hurt women. Taking advantage of his benevolent nature, the surs sent Durga to slay him. Durga is called "shakti avatar" as she was able to do what the "Gods" could not." The Asura community of Jharkhand believe in this myth, he said.

The posters put up by AIBSF include a copy of the former Jharkhand Chief Minister Shibu Soren's interview in which he talks about the Asura community in Jharkhand and the efforts of his government to uplift them.

While the AIBSF members alleged that there was tension on campus because of the observance Mahishasur's Martyrdom Day some "rightist political elements tearing their posters.

"We are not going to do thing about this. We have infor the administration about the it is up to them to look into Sandeep, general secretar

दैनिक जागरण | 5

नोटिस के बदले में नोटिस देने की तैयारी

महिषासुर यादव वंश के राजा थे

JNU notice to student leader for 'offensive' Durga Puja posters

Jitendra Kumar Yadav has been given time till November 31 to reply to the notice.

राष्ट्रीय सहारा 5

नई दिल्ली, सोमवार 22 अक्तूबर

जेएनयू : महिषासुर शहा दिवस मनाने की तैयारी

सहारा 5

प्रशासन और छात्र संगठन आमने सामने

प्रॉक्टोरियल जांच बंद, मांगी माफी

सहारा 5

प्रॉक्टर के खिलाफ एकजुट हुए छात्र, शक्ति प्रदर्शन आज

Students from various states mark Mahishasur Day at JNU

EXPRESS NEWS SERVICE
NEW DELHI, OCTOBER 29

MEMBERS of the All India Backward Students' Federation (AIBSF) observed Mahishasur martyrdom day on the Jawaharlal Nehru University campus on Monday evening.

Students from other states, including those from Bhim Rao Ambedkar University, Bihar, and Lucknow University participated.

The programme saw a discussion on the legend behind Mahishasur, the demon king who was slain by Goddess Durga.

Last year, the event had caused a furore on campus and ended in a clash between members of the Akhil Bharatiya Vidyarthi Parishad (ABVP). A case was also registered and a show-cause notice was issued to AIBSF president Jitendra Yadav.

Members of the AIBSF alleged that some of the posters relating to the event was torn this year on the campus. However, ABVP members denied any hand in this.

"The aim behind observing the day is to attract attention. It is just a handful of students who are organising the event. It is up to the administration to look into the issue. Moreover, there is space for everyone to hold meetings and discuss their views on this campus," Sandeep, an ABVP member, said.

Last year, the event had caused a furore on campus and ended in a clash between members of the Akhil Bharatiya Vidyarthi Parishad (ABVP) and AIBSF

AIBSF president Jitendra Yadav said unlike the "common" belief that paints Mahishasur as a demon king, symbolising evil, the Asur community in Jharkhand looked at him in a different light. They believe that Mahishasur was a kind and benevolent ruler of the region, which is now a part of Bihar, Jharkhand, Orissa and West Bengal.

"When "outsiders" came to the region, they tried to conquer it because of the fertility of the soil. Mahishasur's forces, however, put up a fight and he could not be defeated. Seeing this and taking advantage of Mahishasur's resolution that he will not kill animals or harm women, the sun or gods sent Durga who slayed him. Durga is called "shakti" because by killing Mahishasur she did something which the gods were unable to do," Yadav said.

Fight for Mahishasura on JNU campus

The painting by Lal Ratnakar that was displayed on Mahishasura Day

OUR CORRESPONDENT

the pioneer

NEW DELHI | FRIDAY | OCTOBER 28, 2011

Student to sue JNU for 'offensive poster' claim

STAFF REPORTER ■ NEW DELHI

'Backward' students mark 2nd Mahishasur Diwas

THE TRIBUNE, NEW DELHI, THURSDAY, OCTOBER 25, 2012

Mahishasur day row

AIBSF complains about torn posters on JNU campus

अमर उजाला | 22 अक्तूबर 2012

29 को मनेगा महिषासुर शहादत दिवस

अमर उजाला ब्यूरो

जेएनयू छात्रसंघ का आज विरोध प्रदर्शन

छात्र नेता जितेंद्र यादव को दंडि किए जाने का मामला गरमाया

आंदोलन अनुचित- प्रमोद

महिषासुर शहादत दिवस को लेकर जेएनयू हुआ गर्म

कार्यालय संवाददाता

- एआईबीएसएफ के पोस्टर फाड़े गए
- 29 अक्टूबर को मनाएंगे शहादत दिवस

Student body chief responds to JNU show cause with legal notice

FORWARD Press also defended its article, Kiski Puja Kar Rahe Hai Bahujan?, stating that the allegations are unfounded

नई दिल्ली, 22 अक्टूबर 2012 दैनिक जागरण

www.jagran.com

जेएनयू में मनेगा 29 को महिषासुर शहादत दिवस

जेएनयू में महिषासुर शहादत दिवस आयोजन के उपलक्ष्य में लगा पोस्टर।

जागरण संवाददाता, नई दिल्ली : जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) फिर से विवादों में है। इस बार ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम (एआइबीएसएफ) ने महिषासुर शहादत दिवस मनाने की घोषणा की है। यह आयोजन 29 अक्टूबर को होगा। पोस्टर भी कैंपस में लगाए गए हैं। महिषासुर को बैकवर्ड समाज का नायक व आर्यों ने मां दुर्गा के माध्यम से उसकी हत्या करना दर्शाया है। पोस्टर में झारखंड की कवियत्री सुषमा का फोटो यह कहते हुए दर्शाया गया है कि 'देखो मुझे महा प्रतापी महिषासुर की वंशज हूं मैं'। संगठन के अध्यक्ष जितेंद्र यादव ने कहा कि विजय दशमी को राष्ट्रीय शर्म दिन के रूप में घोषित करने के लिए वे आंदोलन चलाएंगे, क्योंकि यह पर्व उनके पूर्वजों की हत्याओं का जश्न है। जितेंद्र ने कहा कि राजा महिषासुर की हत्या के बाद पूर्णिमा की रात में असुरों ने शोक सभा की थी। इसलिए संगठन शरद पूर्णिमा को शहादत दिवस के रूप में मनाएगा।

युवा महिषासुर

महिषासुर के नाम से शुरू हुआ यह आंदोलन क्या है? इसकी आवश्यकता क्या है? इसके निहितार्थ क्या हैं? ये कुछ सवाल हैं, जो बाहर से हमारी तरफ उछाले जाएंगे. लेकिन इसी कड़ी में एक बेहद महत्वपूर्ण सवाल होगा, जो हमें खुद से पूछना होगा कि हम इस आंदोलन को किस दृष्टिकोण से देखें? यानी, सबसे महत्वपूर्ण यह है कि हम एक मिथकीय नायक पर कहां खड़े होकर नजर डाल रहे हैं. एक महान सांस्कृतिक युद्ध में छलांग लगाने से पूर्व हमें अपने लांचिंग पैड की जांच ठीक तरह से कर लेनी चाहिए. हमारे पास जोतिबा फूले, डॉ आम्बेडकर और रामास्वामी पेरियार की तेजस्वी परंपरा है, जिसने आधुनिक काल में मिथकों के वैज्ञानिक अध्ययन की जमीन तैयार की है. महिषासुर को अपना नायक घोषित करने वाले इस आंदोलन को भी खुद को इसी परंपरा से जोड़ना होगा.

–प्रमोद रंजन
janvikalp@gmail.com
मो. 9811884495

महिषासुर

₹ 50.00